सत्य

अथ आत्मबोधप्रारंभः।

भारतपथिक कबीरपंथी-
स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने
बम्बई
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें
छापकर प्रकाशित किया।

संवत् १९६३, शाके १८२८.

Printed at the "Shri Venkateshwar" Steam Press, Bombay.

सत्य नाम।
श्री कबीर साहिब।

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतान, धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दया नाम, की दया वंश-ब्यालीसकी दया।

अथ श्री बोधसागरे

सप्तविंशतिस्तरंगः ।

आतमबोध प्रारम्भः ।

रेखता ।

भक्ति भगवान की बहुत बारीकहै, शीस सौंपे बिना भक्तिनाहीं।
होय अबधूत सबआश तनकीतजै, जीवता मरै सो भक्ति पाही॥
नाचना कूदना तालको पीटना, राँड़िया खेलकी भक्ति नाहीं।
रैनदिन तार निर्धार सो लागिरहै, कहैं कबीर तब भक्ति पाही॥

भजनके वासते सन्तजन कहतहै, राम रमतीति एक नामतेरा।
नामएकठामकुलगामनहिं देखिये,अगमऔनिगमदोउथकतचेरा
इन्द्रियादि मन वाक्य पहुंचे नहीं,सकलप्रकाशकरि रहेन्यारा।
रूपअरु रेख बपुभेष नहिं पाइये, कहैं कबीर सो पीव प्यारा॥
आप दरिआवहै त्रंगपुनी आवही, आपही बुद बुदाफेनहोई।
आपही घटहै मठ पुनि आपही, आपही अम्बर अकाश सोई॥
आप प्रकटहै आप माही रमे, आपही करत किलोल भाई।
कहैं कबीर आपही रमिरहा, आप बिनु दूसरा कहाँ समाई॥
आपही मृत्तिका आपही कुलालहै, आपही फेरता चक्र काला।
आपही सूतहै आपमणि या बना, आपही फेरता चक्र माला
आपही सतगुरु शिष्य पुनि आपही, आपहीकरत उपदेश भाई
कहैं कबीर तहाँ आपही बनिरहा, आपही आपको दे लखाई॥
ऊंच अरु नीच कछु भेद आनै नहीं,राव अरु रंक सवएक देखै।
एकही तत अरु एकही ठाठहै, एकबिन दूसरा नाहिं पेखै॥
काम में क्रोध अरु रागमें द्वेष है, राम भजि राम भजि दूरघेरै।
कहैं कबीर मन पवनको फेरिके,पिसन पांच प्रबलकोपडिजेरै॥
एकबिन दूसरा द्दष्टि आवेनहीं, एकबिन कहो तुम कौन दूजा।
एक बिन दूसरी सेव कहो कौनकी, एक बिनदूसरी कौन पूजा॥
पांच पचीसका एक मंडानहै, एक प्रकाश ब्रह्माण्ड कीया।
कहैं कबीर अब द्वैत दीखे नहीं, एक अद्वैत गुरु देव दीया॥
आडिग्ग अडोल अबीरुसम्रथधनी, नामनिर्वाण तिस थाहनाहीं।
शेषशिव बिरंचितिसथाहपावेंनहीं,उदयअरुअस्तनहींधूपछांही॥
रूप अरु रेष नहीं वर्ण आश्रम कहूं, आप अलेख सब ठौर पूरा।
कहैं कबीर कहूं लिसहोवे नहीं, सैन लखे कोइ संतसूरा॥
जलजहाँ थलकरे थलतहाँ वहनकरे,वहन कारि फिरि थल करत साईं।

राव सो रंक करि रंक राजा करै, अविगतिकी गति कहो कौनपाई॥
पलएकमें भाजिकरि फिर रचनकरे, समरत्थकीबाजिया कौनजाने।
कहैं कबीर यह खेल समरत्थका, होय साक्षी तिहिको सुख माने॥
रजाय तुम्हारि साइंयां करोसोहोयगा, आपकीरजाकहो कौनमेटे।
पल एकके बीचमें दरिआवदहेपलता, फिरि पलएकमहँलेस मेटै॥
उलटका पुलट अरु पुलटका उलटहै, आपका खेल कहो कौनपावै।
पल एकमें भाजि करि फिरि रचनाकरै, कहैंकबीर नहिं हारिआवै॥
दृष्टि औ मुष्टि नहिं ज्ञान गुष्टि तहाँ, सकल प्रकाश करि रहे न्यारा।
सकलके मांहिअरु सकलकी जानहै, आदिअरु अन्तनहिं मध्यपारा॥
परम प्रकाश आकाशवत जानिये, बाहिरा भीतरा एक साईं ।
कहैं कबीर यह खेल भरपूर है, आवना जावना फेरि नाईं ॥
खेल अवधूतका महा अद्वैत है, द्वैत प्रपंचका लेश नाहीं ।
गुणमयी कृत सब कालकीडाटमें, शेषशिव विरंचि अरु विष्णु ताहीं॥
रहै निर्धार आकार थिर ना रहै, विश्व संसार सब अधर माहीं ।
कहैं कबीर यह खेल निश्चेकिया, जन्मअरुमरण तिस भर्मनाहीं॥
देख अवधूतके ज्ञानका घेसला, कालके जालको दूरि तोडे ।
गुणमई कृतको काटि पयमाल करि, पांच पचीसको पलटिमोडै॥
राग अरु द्वेषकी भीतिको ढाय करि, भर्मके कोटको फेरि फोडै ।
कहैं कबीर यों प्रेम प्रकाश करि, सुरति अरु निरतिका तार जोडै॥
सैलियां बाकियां देख अवधूतकी, जीवता मरै सो भक्ति पाही ।
तीर खुरसानका बहत तीखा वहै, लगै उर मांहि गद टिकै नाहीं॥
राजसा माहि गद बहु ऊपजे, तामसा मांहि अहंकार भाई ।
कहैं कबीर तहां शांति कहँ पाइये, जीवकी बृत्तिको ठीक ठाईं ॥
दृष्टि अवधूतका दुष्ट नहिं सहि सके, दुष्टको द्वैतकी दृष्टि भासै ।
परम प्रकाशका भेद पावे नहीं, इन्द्रिया द्वारके रहे आसै ॥

कहै सब साधु अगाध मैं क्या कहूं, बिना निर्वेद नाहिं दृष्टि आवे।
कहैं कबीर यह खेल बारीक है, बिना गुरु देव कहो कौन पावै॥
देव निर्वाण तहाँ बाण लागे नहीं, सकल कला सिरे काल देवा।
शेष शिव बिरंचि तिस पारपावे नहीं, चन्द अरु सूर फिरकरै सेवा॥
तेज क्षिति पवन जल रहतआज्ञासही, निगमहुकहत नहिं पार आवे।
कहत अगाध २ सब संत जन, दास कबीर तहँ शीस नावै॥
सांचासाइयांएकतूऔर दूजा नहीं, दृष्टि दीखे तेतीसकलमाया।
गुणमयी कृत प्रपंच सब बिनसिहैं, थिर नहीं दीखता रहन पाया॥
घट अरु मठ महदादि थिर ना रहै, रहैगा आदि सोइ अंतनाई।
कहैं कबीर मैं तासुकी बन्दगी, एक भरपूर सर्वज्ञ साई॥
देवरे देवरे देव निर्वाण है, कालका बाण तहाँ नाहिं लागै।
चन्द औ सूर प्रकाश नहिं करि सकै, करत परपंच कै रहै आगै॥
विश्व आधार अरु आप निर्धारहै, लहै कोइ संत गुरु ज्ञान जागै।
कहैं कबीर विष धार सो ना बहै, जन्म अरु मरणका भर्म भागे॥
खिरै सो थिर नहीं थिर नहीं खिरत है, आनंद अमरानंद अलख योगी।
सकलकेमाहिअरु रहतअतीतहोय, तीनगुनअरुपांचरस सकलभोगी॥
खेल अगाधकछु कहतआवे नहीं, खेलको देखि करि मगन हूआ।
कहैं कबीर यह सैन गुंगातणी, जानिहै संत सो नाहिं जूआ॥
जागता २ जागकर देखिया, सोवता सोवता सुख सोया।
खोवता खोवता खोय सारा दिया, रहासो कहनमें नाहिं आया॥
अर्थ अगाध कोइ साध भल पाइहै, जासुके खेल प्रकट होई।
कहैं कबीर यह खेल प्रतीतका, बिना प्रतीत क्या कहै कोई॥
रैन दिन संत यूं सोवता देखिये, संसारकी तरफसू पीठ दीया।
मन अरु पवन फिर फूट चालै नहीं, चन्दअरुसूरकूं समकीया॥
टकटकी चन्द चकोरकी रहतहै, सुरतिअरुनिरतिकातारबाजे।

नौबत तहाँ रैन दिन शून्यमें धुरत है, कहैं कबीर यों गगन गाजै॥
पाव अरु पलकी आरती कौनसी, रैन दिन आरती संत गावें ।
घुरत निशान तहाँ गौबकी झालरा, गैबके घंटका नाद आवे ॥
जहाँ नेव बिन देहरा देव निर्बाणहै, गगनके तख्तपर शुक्ति सारी।
कहैं कबीर तहाँ रैन दिन आरती, बातियां पांच पूजा उतारी ॥
साइ आपकी सेवतो आपही जानिहो, आपकाभेद कहुकौन पावे।
आपनी आपनी बुद्धिउनमानसे।, बचनविलासकरि लहरिलावे॥
तू कहै तैसानहीं हैसो नहीं देखिये, निगम हू कहत नहीं पार आवे।
कहैं कबीर या सैन गुंग तणी, गुंग होय सो सैन पावे ॥
कथतहै ज्ञान अरु ध्यान पुनि धरतहै, चलत विचारके पंथमांही ।
श्वास उश्वास फिरि गूदडी सीवता, सुरतिकीसूइनाहिंअंतजाही ॥
रहै निर्द्वन्द कोइ द्वन्दमें ना पडै, मन अरु पवनका करै लेखा ।
कहैं कबीर फिर फूट चालै नहीं, सहजदरिआवमें रमे मेला ॥
पुरुषकी सेवते पुरुषहि होत है, नारिके सेवते नारि होई ।
पुरुषकी सेवते परम पद पाइये, नारिके सेव नहिं मुक्ति कोई ॥
पुरुष प्रमात्मा देव निर्वाण है, नारिये करत प्रपंच सारा ।
गुण मई कृतको त्यागरे बावरे, कहैं कबीर ज्यों होय पारा ॥
दरोगे बापडै दाम लेखै किया, छतरिया माहि तबकरी वोरी ।
वोवरी माहि तहां बैसि करि बावरे, ज्ञान कपाट सूँ जडी मोरी॥
रामही राम तहां सदा विश्राम है, रैन दिन जामजहाँ बजैबाजा ।
कहैं कबीर तहाँ पीव संग खेलना, सकल देवा सिरे देवराजा ॥
पाँच अरु तीनकी छत्रड़ी साज करि, डरोगे ऊपरै प्राण हुआ ।
गगनकीगुफाको पवनसूँ साफकरि, दमहिदम तहां लियाअजूवा॥
शाह सुलतान सुब्हान सूँ सुर्खरू, दरोगै जाय करि ज्वाबदीया।
कहैं कबीर दीवान तबमिहर करि, आपने कदम मों राखि लीया॥

कर्म अरु भर्म सब संसार करत है, पीवकीपरख कोइ संतजाने ।
सुरतिअरुनिरतिमन पवनकूँपलटिकरि, गंगाअरुयमुनकेघाटआनै॥
पाँचको नाथकरि साथसोहं लिया, अधर दरिआवका सुख माने ।
कहैं कबीर सोइ संत निर्भय रहै, जन्म अरु मरणका भर्ममाने॥
नाभि कस्तूरिका मृग बौरे फिरै, उलटि करि आपमेंनाहिं जोवे।
भर्मता भर्मता योनि पूरी करै, अंधयो आपुनी बस्तु खोवै ॥
नाभि निज नामसो ठाम पावै नहीं, जगत सब तीर्थ गर्भ भूला।
कहैं कबीर हरिपंथको नालहै, अंध भव सिन्धुमें फिरत झूला ॥
उलटि वजूदमें भर्मना दूरि करि, बाछिकै भटकनै सिद्धि नाहीं ।
फिरत बाहरे तहां बस्तुको नास है, वस्तु बिचारि तू देखमाहीं॥
आपमें आपहै आप अजपा जपो, जाप जपेते आप पावै ।
कहैं कबीर ये सत्यकी सैनहै, सत्तका शब्द सब संत गावै ॥
गंगा उलटि धरो यमुन बासा करो, पलटि पञ्चतीर्थी पाप जावे।
फूरि वर्षा तहां रैन दिन झरतहै, न्हायसो फिरि भौ नाहिं आवे ॥
फिरत बार तहां बुधिको नाश है, बाँझके भटकने सिद्धिनाहीं ।
कहैंकबीर इस युक्तिको गहेगा, जनमअरु मरण तव अंत पाही॥
बपु बालोतरा माहि वासो रहै, ज्ञान प्रकाश बिनरहै नाहीं ।
बोलता चालता खावता पीवता, करै उपदेश अरु रहै माहीं ॥
दृष्टि दीसै तिनको रहन पावै नहीं, वपु बालोतरो बिनासि जावै ।
कहैंकबीर एकबोलता सही करै,सोजन्मअरु मरणमें नाहिंआवै॥
देख वजूदमें अजब विश्राम है, होय मौजूद तो सही पावै ।
फेरिमन पवनकोघेरि उलटा चले, पाँच पचीसकोपलटि लावै॥
शब्दकी डोरि सुख सिन्धुका झूलना, घोरकीशोर तहँ नाद गावे।
नीर बिनुकमलतहँ देखअति फूलिया,कहैं कबीरमन भँवरछावे॥
रामकी दयाते खेलप्रकट हुआ, तासुका खेल कहो कौनजानै।

होय अलीक सोखेल पावैसही, मगन होय आपमेंमौजमानै ॥
सदा निर्द्वन्द कोइ द्वन्दब्यापैनहीं, गुरुदेवकी मेहर ते मौजपाई ।
कहैं कबीर योंखेल सुखसिन्धुमें, भूलि भर्ममें नहिं अंतजाई ॥
चक्रके बीचमें कमल अति फूलिया,तासुकासुख कोईसन्तजानै।
कुफल नौद्वारअरु पवनकोरोकना, भृकुटिमध्य मन भवर ठानै॥
शब्दकीघोर चहुं ओर तहाँ होतहै, अधर दीर आवका सुखमानै ।
कहैं कबीर यो खेलि सुख सिन्धुमें,जन्म अरुमरनका भर्म मानै॥
गंग अरु यमनके घाट को खोजिले, भंवर गुंजार तहाँ होय भाई।
सरस्वती नीरतहाँदेख निर्मल वहै,तासु के जलपिये प्यास जाई॥
पाँचकी प्यास तहँ देखि पूरी भई, तिनकी तापतो लगै नाहीं ।
कहैं कबीर यह अगमका खेल है, गैबका चाँदना देखि माही ॥
बोलरे बोल अब चुप क्यों होइ रहा, बोल मन सुवटा ब्रह्म वानी ।
पाँचकोपलटिकरितीनिकोजीतिले,महलचौथातनीखबरजानी॥
गगन गर्जे तहां नीर निझर झरै, परखि पीवै कोइ संत सूरा ।
कहैं कबीर मस्तान माता रहे, बिना मृदंग बजै तूरा ॥
माँडि मंथान मन रईको फेरना, होय घमसान तहां गगन गाजे ।
उठै झँकार तहाँ नाद अनहद घुरै, त्रिकुटी महलके बैठ छाजे ॥
नामकी नेतिकरि चित्तको फेरना, ततको तायकरि घृत लीया ।
कहैंकबीर योंसंत निर्भयहुआ, परम सुखधामतहाँ लागिजीया॥
गड़ानिशानतहाँ शून्यकेबीचमें,उलटिकरिसुरतिफिरिनाहिंआवै।
दूधकोमथिकरि घृत न्यारा किया,बहुरिफिरितकरमेंनाहिंसमावै॥
माँडि मंथानतहाँपांचउलटाकिया, नामकीनेति सोसुरतिफेरी ।
कहैं कबीर यों संतनिर्भय हुआ, जनमऔ मरणकी मिटी फेरी ॥
श्रवणअरु नयनमुखनासिका रटत है, रोमहीरोमधुनि एक होई ।
बाहिरा भीतरा एकही तान है, एक बिन दूसरी नाहिं कोई

अधर दरिआव धसेको मीलिया, बाहिरा भीतरा एक पानी ।
कहैं कबीर यह खेलदरिआवका, योग अबधूतकी यहै बाणी ॥
शशि प्रकाशते सूर उगासही, तूर वाजै तहाँ संत झूलै ।
तत झनकार तहाँ नूर वर्षत रहै , सरस पीवै तहाँ पांच भूलै ॥
दरिआवऔरबुन्दज्योदेखअन्तरनहीं,जीवअरुशीवयोंएकआही।
कहैं कबीर यह सैन गुंगा तणी, वेद कितेबकी गम नाहीं ॥
अगम स्थान गुरुज्ञान बिन नाल है, लहै गुरुज्ञान कोइसंत पूरा ।
द्वादशां पलटि करि षोडशां प्रकटै, गगन गर्जै तहाँ बजै तूरा ॥
ईड़ा पिंगलासुषुमना समकरैं, अर्ध अरु उर्ध विचध्यानलावै ।
कहैंकबीर सोइ संत निर्भय रहें, कालकी चोट फिरनाहिं खावै॥
अधरआसनकियाअगमप्यालापिया,योगकोमूलगहियुक्तिपाई।
पंथ बिनचलिगयेशहर बेगम्य पुरा,दयागुरुदेवकीसमझि आई॥
ध्यानधरि देखियानैन बिनुपेखिया,अगमअगाधसब कहतजाई।
कहैं कबीर कोइ भेद बिरला लहैं, सो कहैया भेद भाई ॥
शहर बेगम्य पुरागम्य कोई ना लहै, होय बेगम्य सोई गम्य पावै।
गुननकी गम्य नाअजब बिश्रामहै, सैनको लहै सोइ सैनगावै॥
मूक बाणी तिको स्वाद कैसे लहै, स्वाद दावै शोई सुख मानै ।
कहैं कबीर या सैन गुंगा तणी, गुंगा होय सो सैन जानै ॥
अधरही ख्याल अरु अधरहीकल है, अधरकेवीचतहाँ मठकीया।
खेलउलठाचलाजायचौथे मिला, सिन्धुके मुखफिर शीसदीया॥
शब्द घंघोर टंकोर तहाँ अधर है, नूरको परास करि पीव पाया ।
कहैंकबीर यह खेल अवधूतका,खेलिअवधूत घर सहज आया॥
छका अबधूत मस्तान माता फिरै, ज्ञान बैराग्य सो छका पूरा ।
श्वासा उश्वासकाप्रेम प्याला पिया, गगन गर्जै तहाँ बजै तूरा ॥
पीठि संसार सो गम रता रहै यतन जग्ना लिया सदा खेले ।

कहैं कबीर गुरु पीरसूं सुर्खरु, परम सुख धाम तहाँ प्राण मेले ॥
छकासो थका फिर देह धारे नहीं, करम कपाट सबदूर कीया।
जिनश्वासउश्वासकाप्रेमप्यालापिया,नामदरिआवतहांपैसिजीया॥
चढ़ीमतवालियाऔरहुआमनसावता,फटिकज्योंफेरिनहिंफूटजावै।
कहैंकबीरजिनवासनिर्भय किया, बहुरि संसारमें नाहिं आवै ॥
तरक संसार सो फरक फुक्र सदा, गरक गुरुज्ञानमें युक्ति योगी।
अरध अरु इरधके बीच आसनकिया,बंक प्यालेपीवे रस भोगी॥
आधा दरिआव जहाँजाय डोरि लगी,महल वारीकका भेदपाया।
कहैं कबीर यों संत निर्भय हुआ,परमसुख धाम तहाँ प्राणलाया॥
चमड़ी मतवालि तहां ब्रह्म भाठी झरै, पिवै कोइ सूरमां शीसमेलै।
पांचको मेलि सैतानको पकड़ि करि, प्रेमकाप्यालाअधर झेले॥
पटलिमनपवनको उसटिसूधाकंवल,अरध अरुउरधबिचध्यान लावै।
कहैं कबीर मस्तानमाता रहै, बिनाकर तातियां नाद गावै ॥
आठही पहर मतवाली लागी रहै, आठही पहरकी छाक पीवै।
आठही पहर मस्ता माता रहै; ब्रह्मकी छोलिमें संत जीवै ॥
साचहीकहतअरुसांचही रहतहै, काचकोत्यागिकरि सांच लागा।
कहैं कबीर यों सन्तनिर्भय हुआ,जन्मअरुमरनका भर्म भागा ॥
करत किलोल दरिआवके बीचमें, ब्रह्मकी छोलिमें हंस झूलै॥
अरध अरु उरधका एकवारा तहाँ,पलटिमनेपवनको कमलफूलै।
गगन गर्जे तहाँ सदा पावस झरै, होत झड़ रैन दिन बजै तूरा।
बेनकितवको गमनाहीं तहाँ, कहैं कबीर कोई रमै सूरा ॥
बजत करतालतहां नीरनिझरझरे; होत टकसाल तहाँशब्दपूरा।
गैबकी मौन अरु ज्ञानका चांदना,शब्दअनहद तहाँ बजै तूरा ॥
होत ततकार तहाँ निरतनिशदिन करै,सुरतिमनपवनकेबैठिछाजै।
कहैं,कबीर गुरुपीरकीमिहरिसूँ , बिना वयबादले गगनि गाजै ॥

गगनकीगुफातहाँ गैवाकाचांदना, उदयअरुअस्तकानाम नाहीं।
दिवसअरु रैनतहाँ नेकनहिं पाइये, परमप्रकाशका सन्तमाही॥
सदा आनन्द दुख द्वन्द व्यापे नहीं, पूर्णानन्द भरपूर देखा ।
भ्रम अरु भ्रान्ति तहां नेकनहिं पाइये, कहैंकबीर रस एकपेखा॥
खेल ब्रह्माण्डका पिण्डमें देखिया, जगतकी भरमनादूर भागी ।
बाहिरा भीतराएक आकाशवत, सुषम्ना डोरी तहाँउलटिलागी॥
पाँचको पलटी करिशून्य मोघरकिया, धरामेंअधर भरपूरदेखा।
कहैं कबीर गुरु पीरकी हमरि सूं, त्रिकुटी मंध्य दीदार पेखा ॥
देख दीदार मस्तान मन होरहा, सकल भर पूरहै नूर तेरा ।
सुभग दरिआवजहाँहंसमोतीचुगे, कालकाजालतहाँ नाहिंनेरा ॥
ज्ञानिकीपालिअरुसहजमतवालिहै,अधरआसनकियाअगमडेरा
कहैं कबीर तहाँ द्वैत मापे नहींजन्म, अरु मरनका मिटाफेरा ॥
ब्रह्मदरियावतहाँ करतकिलोलमन,सुरतिकीसीपतहाँ शब्दमोती।
गुरुपीरकीनिहरते भेदयह पायहै,मोतिया माँहितहाँनाम जोति॥
तिनयापरखकोइजानिहैंजौहरी,कौडियावाणिजनहिंपरखिआवे।
कहैंकबीरकोइ होय मरजीवता, तोखेल दरिआवकाहाथ आवै॥
चितकीरचमककीप्रीतिकरि पथरिया,सुरतिकासोखताखूबलाया
अग्निको झारि अवधूतप्रचण्ड करि, कर्मसब काठले माहि द्रास्य
हुआ निर्धूमसब सकलसंसार मिटा,खुला कपाटतबघाटपाया।
कहैं कबीर अब द्वैत दीखै नहीं, अखंड करुणा भई रामराया ॥
करियोगयमडाठउगालिकरिदेहगुणचतुर्दशभवनकालोगखाया।
महाप्रलयकियाबीजकोईनारहा,रहाएकनिर्द्वन्दनहिंकालखाया॥
खेल अगाधकोइ साधुभल पाइ हैं,महाप्रलय जिनकिया सोई ।
कहैं कबीर फिरउपजिविनशैनहीं, अहंममताजिनकुबुधि खोई॥
कालकेजालके भेद नाहिं राममें, कालकहौं कौनको खाइ है र ।

बस्तुमें बस्तुअरु तत्त्वमें तत्त्व मिले, जीवका नामयो जायहै रे॥
जन्म अरु मरनकी शंक नाहीं कछु, जन्म अरुमरन कोपाइहै रे॥
कहैं कबीर यों संत निर्भय हुआ, बहुरि संसार नहिं आइहै रे॥
धेनु ब्यावैतिको दूध भरवे नहीं, बाँझडी धेनुको दूध होई।
बाँझड़ी धेनुको दूध पीवैतिको, होय सुखरूप ना मरै कोई॥
बाँझड़ी धेनुको पुत्र पैदा हुआ, मरि मन मृगको माँस खावै।
कहैं कबीर सो पुत्र है पाँगुला, चढ़ै आकाश फिर नाहिं आवै॥
समुन्द्र उलटा तबैसीपमाहीं मिला, हुआ मोती तहां सीपमाहीं।
जल बिनाहंसतहांसदामोती चुगै, ताहंसको कालकीचोटनाहीं॥
नदी उलटी तबै समुन्द्र माही मिली, प्राण हंसातहां सदा झूलै।
कहैं कबीर कोइ भेद बिरला लहै, बिना जल कनकी कमल फूलै॥
नहरी काटि करि उलटि पाछे दई, ज्यायुं दरियावका सोतलागा।
सदा सुख सिंधुमें माछलाँ झूलता, जन्मअरुमरनका भर्मभागा॥
रोमही रोम रसनीरको पीवता, नीरकी प्याससे सदा जीवै।
कहैं कबीर सुख सिन्धु छाडै नहीं, खार दरिआवजलनाहिंपीवै॥
सुख सिन्धुकेसीरका स्वादतबपाइहै, चाहका चौतरा उठिजावै।
बीजके माहिं ज्यों वृक्ष विस्तार है, यों चाहके मांहिसबरोगआवै॥
प्रौढ़ बैरागमें होय आरूढ़ मन, चाहके चौतरे आग दीजै।
कहैं कबीर यों होय निर्त्रासनी, ततसो रत्त होय काज कीजै॥
सूर प्रकाश तहां रैन कहाँ पाइये, रैनिप्रकाश नहिं सूर भासै।
ज्ञान प्रकाश अज्ञान कहँ पाइये, होय अज्ञान तहां ज्ञान नासै॥
काम बलवान तहांराम कहँ पाइये, रमिरहा राम तहांकामनाहीं।
कहैं कबीर यह तत्त्वबिचारहै, समझि बिचारि करि देख माहीं॥
कामकी कोथली मूलमें जलि गई, रामकी कोथली रहै प्यारे।
राम विश्राम तहां काम कहाँ पाइये, कामविश्रामतहांरामन्यारे॥

दिवस अरु रैन फिरएकठांना रहै, ज्ञान अज्ञान नहिं एक होई ।
कहैं कबीर यह भेद जान्या बिना, जीव बिश्राम क्यों लहैकोई ॥
घुरत निशान तहां शून्यके बीचमें, रमत चौगान कोइसंत सूरा ।
झूझ बिन झूझ अरु बूझ बिनबूझना, पावबिनपंथतहांबजै तूरा ॥
नैन बिनु सैन अरु वैनबिनुबोलना, पाप प्रचंड तहांजाय चूरा ।
कहैं कबीर ये विकट सा खेलहै, लहै कोइ संत गुरु ज्ञान पूरा ॥
एक शमसेर एक सार बाजती रहै, खेल कोई सूरमा संत झेलै ।
कामदलजीतिकरिक्रोधपयमालकरिपरमसुखधामतहांप्राणमेलै ॥
शील सनाहकरि ज्ञानकोखड्गले, आय चौगानमें खेल खेलै ।
कहैं कबीर संत जन सूरमा, शीसको सौंपि करि करम ठेलै ॥
पकड़ि शमशेर संग्राममें पैठिया, देह प्रयंत करि युद्ध भाई ।
काटि शिर बैरिया दाबि जहाँकातहां, आयदरबारमें शीस नाई ॥
करतमतवाली जहाँ संतजनसूरमा, घुरतनिशानतहांगगनिघाई ।
कहैं कबीर अब श्यामसो सुर्खरू, मौजदरियावकी भक्ति पाई ॥
तन बन्दूक अरु पवन दारूकिया, ज्ञानगोली तहां खूब दाटी ।
सुरतिकी जामगीमूठ चौथेलगी, भर्मकी भीति तहां दूरिफाटी ॥
कहैं कबीर कोइ खेलिहैं सूरमा, कायराखेल यह हाथ नाहीं ।
आसकी फाँस काटि निर्भयभया, रामरमिरामरमि[illegible]र्क माहीं ॥
ज्ञान शमशेरको बाँधि योगी चढ़ै, मारि मन मीररणधीर हूआ ।
खेतकोजीतिकरिरिपिसनसबपेलिया, मिलाहरिमांहिअवनाहिंजूवा ।
जगतमें यश अरु दाद दर्गाहमें, खेलयों खेलिहैं सूर कोई ।
कहैं कबीर यह सूरका खेलहै, कायरां खेल ये नाहिं होई ॥
सूर संग्रामको देखि भाजै नहीं, देखि भाजैतिको सूर नाहीं ।
कामअरुक्रोधमदलोभसोजूझना, मंडाघमसान तहां खेतमाहीं ॥
शील अरु साँच संतोषसहाईभये, ज्ञान शमशेर तहांखूब बाजै ।

कहैं कबीर कोइ जूझि हैंसूरमा, कायरा भीरु तहां धरडिभाजै ॥
शूर संग्रामको देखि सन्मुख मँडा, शीश दे नाथको साथहुआ।
कमदकीलो कियो फौजमांही पड़ा,पिसन पाँचुदलजीतिजुवा ॥
ज्ञान शमशेर ले भूमि सवसर करी,जायनिर्बानपदकियाबासा ।
कहैं कबीररणधीरनिर्भयहुआ, शीसजगदीशजगजीति खासा ॥
साधुकाखेलतो विकटबैडा मता, सती औ सूरकी चाल आगै ।
सूर घमसानहैपलकएक दोयका,सतीघमसानपलएक लागै ॥
साधु घमसानहै रैनि दिन जूझना, देह प्रयंत का काम भाई ।
कहैंकबीरटुकबाग ढ़ीली करै, तोउलटिमनमगनसौ जमी आई ॥
साधु पद कहत तो बातअगाधहै, साधु का खेल तो कठिन भाई।
होयमरजीवता गत सब गुण करे, साधु पद भला तो हाथ आई ॥
अवनि कै गुण धरै रहत गिरि मेरुज्यों,किला कोदेखिनहिं छोभपावै।
कहैं कबीर कोइ रेख नहिं ऊपजै, साधु पद भला तोहाथ आवै ॥
नाच आवै तबै काछको काछिये,नाचबिनकाछकिसकाम आवै ।
पहिरि सन्नाह धरि नाम रणजीतको, बेरघमसानकेकूदि जावै ॥
उतरै नूर अरु श्याम नहिं आदरे, दाद दर्गाह में नाहिं पावै ।
सिंहकी खाल अरु चालहै भेडकी, कहैंकबीरतबसियालखावै ॥
ब्रह्म चौगान तहाँज्ञानकी गेंदहै, रमत अबधूत कोई सन्त सूरा ।
सुरति केदंडसोफेरि मन पवनको, शब्दअनहद तहाँ बजे तूरा ॥
सदारसएक तहाँ मूठिनहीं बिभचरे,कालसेतीलडै रैनदिनहोय घमसानमाही।
कहैं कबीर यह विकट बैड़ा मता, कायरा खेल का काम नाहीं ॥
सकल संसारमें एक चीपि फिरि, शीलअरुसांच संतोष नाहीं ।
जगत अरु भेष सबएक नाकै चला, जत अरुसत्तकहाँ ठौरपाही॥
दम्भपाषंड संसारसब मिलतहै, सांचके शब्दको नाहीं मानै ।
कहैं कबीर यह खेल बारीकहै, साधुके राहको कौन जानै ॥

सकल संसार विषधारमें बहतहै, रहत कोइ सन्तजन नामराता ।
झूठअरुकपटयेदूरिदिलतैकरे, तबजन्मअरु मरनकामर्म भागा॥
सुखसार हृदयधरेछारसब पर हरै, इन्द्रिया द्वारते फिरै पूठा ।
कहैं कबीर सोइ सन्त निर्भय हुआ, जगतसंसार सो रहै रूठा ॥
राग अरुद्वेषते रहित हैं तेजना, येजना रामके रंग राते ।
महल बारीकमें सदा भीनारहै, प्रेम प्याला पिवे रस माते ॥
ज्ञान गलतानअरु अंग शीतलसबै, धरामेंअधरमिलिएकहूआ ।
कहैं कबीर महदादि अरु मठज्यों, घटा फूटैं जबै माहि जूवा ॥
भेष दरिआवमें हंस भी होत है, भेषदरिआवतहाँ बग होई ॥
भेषदरियावतहाँ रतन भीहोतहै, भेषदरिआव तहाँ सङ्ख सोई ॥
जीवता मुये बिन भेद पावै नहीं, जीवता मरै सो भेदपावै ।
कहैं कबीर गुरुपीर पूरा मिलै, तब कछु नमूना दृष्टि आवै ॥
झूठ अरु सांचका तान कैसेमिलै, रैंनअरु दिवसकाफरकभारी।
लौनअरु शकरएकसेहोतहैं, कहाँखाँडकीजात कहाँलवनखारी॥
हंस अरु बगदोउ एकसे देखिये, चालके माहितो फरक भारी ।
कहैं कबीर वह हंस मोती चुगे, बगतो माछली ढूंढिमारी ॥
साधुके संगते साधुही होतहै, जगतके संगते जगत होवे ।
साधुके संगते परम सुख ऊपजै, जगतके संगतेजन्म खोवे ॥
साधुके संगते परम पद पाइये, जगतके संग दुख होय भारी ।
कहैं कबीर यह सतका शब्दहै, सुनोरे जीव सब पुर्ष नारी ॥
दरिद्री देख अवधूतहै भरथरी, दूसरा दारिद्री नाहिं कोई ।
पाच अरु पचीसकूपलटि नाकैकिया,मनअरुपवनयेजातिदोई॥
सदानिर्द्वन्दकोइ द्वन्द व्यापेनहीं, अजरअमरानन्द अगम राता ।
कहैं कबीर यह दारिद्री देखिये, दूसरा दरिद्री नरक जाता ॥
सुखी अवधूत दुखी सब जगतहै, रैनदिनपचतनाहिं भूख भागै ।

ये सदानिर्द्वन्द कोइद्वन्दव्यापेनहीं, गुरुदेवकेशब्दतेसूरतिलागी॥
तत्त्वसूरति अरुगत सबगुण किया,प्रकटी अग्नि सबभर्म भागा।
कहैंकबीरसंसार सब गलत है, नहिं ज्ञानका ओढनासदा नागा॥
नरककाजीवसबनरकमें मिलरहा, नरकबिनऔरनहिंबातआवै।
नरकमें उपज्या नरकमें खपेगा, रैनदिननर्कके माहिं ध्यावै॥
शील अरु सांच संतोष सूझै नहीं, इन्द्रिया द्वार रस जहरपीवे।
कहैं कबीर नरसही सो मरेगा, बिना हरि आसरे कहाँ जीवे॥
नाम गुरुदेव अरु शिष्यहै नारिका, कपिज्योंनाचताफिरत भाई।
देतहै ठान तब करत उनमाद नर, बन्दगी करतहै चित्त लाइ॥
करत सँघार अरुखानको देतहै, गुडअरु सूंठ बूरा बिसाई।
कहैं कबीर यह अकिल अज्ञानकी, कहत गुरुदेव नाहिंलाजआई॥
बारहिबार मन पवनको सोधि नर, पांच प्रमोधि करिनामलीजे।
भांग अरु तमाकू खाय अफीमको, कालके जालमें न्यायछीजे॥
भांगकी तोरमें रैनि दिन फूलिया, भजन प्रतापका सुख नाहीं।
कहैं कबीर सुनु शब्द सांचा कहूं, समझविचार करिदेख माही॥
कहनको साध अरु व्याध छूटैनहीं, कोटिमें पाव या देख भाई।
खेत अरुकुवा फिरव्याज बाढोकरै, बलधियाहांककरि देतखाई॥
नामकोफेरि करिजगत धूतासबै, नागिनी नारि घर बार पूरा।
कहैं कबीर मनमाहि फूला फिरै, काल शिर बाजिहै देख तूरा॥
प्रतिग्रह झेलता डरता नाहिं है, कौन गति होइ है जीव थारी।
होयगा ऊंट अरु बाड़िको चरैगा, सो रडता फिरैगा बनसारी॥
पायकी पोटको डारिरे पापिया, पछैभी भार तलबहै भारी।
कहैं कबीर नर अंध चेतै नहीं, बात सांची कहूं लगै खारी॥
साधु जो होय तो व्याधको नाशकर, व्याधके नाशते साधु होवे।
वासनाव्याधिं सबजीवको दहतहै, बिना गुरुदेवकहकौन खोवै॥

कतरनी कपटदिलबीचते दूरिकरि, सांचकी नापनी हाथलीजै।
कहैं कबीर यों होय निर्बासना, निर्मला तत रस नाम लीजै॥
मगनहोयविश्वासधरिध्यानअलेखको, लिखाहैलेखसोमिटैनाहीं।
किया है कृत कछु मेटिको करिसकै, दुखअरुसुख यादेह मांही॥
टहलुवा संग दोय टहल करबो करै, आपनी आपनीबेरि आवै।
कहैं कबीर यों जानि निर्भय रहो, कियाहै कृत सो कहा जावै॥
किया सो हुआ अरु करै सो होयगा, जीवक्यों कलपताफिरैभाई।
लिखाहै अंकसो मेटिको करिसके, बनाहै रिज्क सो दियाजाई॥
गहो विश्वास एक समरत्थ धनीका, आनको छाडि अलेखधावो।
कहैं कबीर सब कल्पना दूरिकरि, पैसिदिलमाहि दिलदारपावो॥
जीवको जक नहीं रैनादिन पचतहै, करमकी रेख सोइ पाइहै रे।
तनकी भूख सहल है बावरे, मनकी मेर नहिं धायहै रे॥
आपना कृत तो दृष्टि नहिं देखता, पारके भागको रोयहै रे।
कहैं कबीर यों रतनको खोय करि, जीव अज्ञानमें सोयहै रे॥
आपनी अग्निमें आपही जलतहै, दोष कहो कौनको दीजिये रे।
संत तो चन्दज्यों अंगशीतल सबै,जीवआपही आपमें छीजियेरे॥
नीरके पियते प्यास मिटि जातहै, डूबि मरै तो दोष कैसा।
कहैं कबीर ये दोष कछु कौनको, जीव पाताल ले न्यायबैसा॥
कामकी अग्निमें जीव सब जरतहै, ज्ञानविचार कछुनाहिंबूझे।
खोय प्रतीत अरु वोय बाजीदई, शब्द मानैनहीं काल सूझे॥
झूंठको थापि करि सांचको उत्थपै, झूठकी पक्षको गहेगांठी॥
कहैं कबीर नर अंध चेतै नहीं, कालकी चोट यों खाय डाठी॥
कामबलवानजगमाहिं योद्धासबल,बीजविस्तार तिहुँलोककिया।
स्वर्गऔमृत्युपाताल सबघेरिया, जीवजलथल सब मारिलिया॥
खुडब्रह्माण्ड सो जीव सारागया, रहाकोइ एक जो कोटि माहीं।

कहैं कबीर गुरु शरन गहि ऊबरा, सो विषधारमें बहा नाहीं ॥
करै प्रतीत सो खाय खोटा सही, रहै निर्भय तहां चोर लागै ॥
अग्निके संगमें ज्योंघीवपघिला चलै, कामिनी संगयोंकामजागै॥
काम बलवान सबजीव अंधाकिया, पडामनस्वार्थी संग झूलै ।
कहैं कबीर कोइ संतजन ऊवरे, नाम निर्बाण नहिं पलकभूलै ॥
नैनकी चोट तो बहुत करडी बहै, चोटसूं ऊबरे संत कोई ॥
शील सन्नाह करि ज्ञानकों खड्गले, शब्दगुरुदेवके सुरति पोई ॥
शब्दविचारका कोटनीका किया, तासुके ऊपरे चोट नाहीं ।
चोट तो तासुको लागिहै आत्मा, कपटकी कतरनी रहैमाहीं ॥
जीवके बांधने एक नारी बनी, दूसरा और नहीं बन्धहै रे ।
ज्योंचोरको रोकने एक खोडा घना, नहिंकाठबिना दूसराफंदहैरे॥
ऊबरै एककोई कोटिमें संत जन, कीलको काटिहरिनाम लागै ।
कहैं कबीर फिर फन्दमें ना पड़े, शब्द गुरुदेवके सुरति जागै ॥
तीनही लोक तहँएक नारीबनी,स्वर्ग अरु मृत्यु पाताल माहीं ।
चारहूँ खानका जीव परबसपड़ा, नारिविन दूसरों फन्दनाहीं ॥
मृतका एक और घट बहु भांतिके, मोहिनी सकलमें एकदीसै ।
कहैं कबीरकोइसन्त जन ऊबरै, दूसरा जीव सबकाल पीसै ॥
नारिभगद्वारमुख बिन्दुनहिंदीजिये, जगतकोकरतनाहिंजोरभाई ।
ज्ञान वैरागि अरु भक्तिसो पलटिये, एकदिन काजसों सिद्धपाई॥
पांचकोउलटि मन अरु पवनको, संत अनेक यों पार हूआ ।
सहजही सहजदरिआवमाहीमिला, कहैंकबीरते नाहिं जूआ ॥
दासमनोहर नहीं यकरंग रहत है,करै किरकंट ज्यों रंग केता ।
गहै वैरागअरु चढ़े अकाशको, गिरै धरनि माहिफिर नाहिंचेता॥
मानकीतानमें खायगोतासही, कांचअरुस्फटिक ज्योंफूटिजावै।
कहैं कबीरजनहीर कहं पाइये, इन्द्रियाद्वारमनउलटि आवै ॥

मिहरकरमिहरकरमिहरकर महाबली,जीवकूं शरणअबराखतेरी ।
पिसनपांचप्रवल सोबासि मेरे नहीं, सन मह नंतकी सबलफेरी॥
तरसअब कीजियेसुख मोहिदीजिये,दयाकरिजीवकोराखिलीजे।
दासकबीरकी मिन्ती साम्भलौ, देवकरुणा मई दरशदीजे ॥
सांई बारहीबार मैं कहतपुकारिके,दरदसों दरसदेओ नाम तेरा ।
पाचको नाथि करि साथराखौसही, विनादीदार दुखप्रानमेरा ॥
काल अकरालकी चोटजोराबहै,विनानिज देवकहो कौन राखै ।
दास कबीर यह बीनती करत हैं, बारहीबार रस राम चाखै ॥
तुही तू तुही एकसमरथ धनी, तुमविना और कोइ नाहिं मेरे ।
काम अरु क्रोधमदलोभ बैरी सवल,रैनि दिनजीवको रहै घेरे ॥
त्राहि पुनि त्राहिमें रैन दिनकरहूँ,मेहरिकरि आपनीशरणलीजै।
दासकबीर यह बिनतीकरत है, देवकरुणा मई नाम दीजै ॥
होय निरपक्ष सबपक्षकूं त्यागकरि, रहै मस्तान गुरुज्ञानमाहीं ।
शील अरु सांच संतोष हृदयधरै, कपटकरतूतके निकट नाहीं॥
कपटकरतूति तहाँरामराजी नहीं, सांचकरतूति सव साधु गावै ।
कहैं कबीर यक सांचको ले रहो, वेद कितनैं सब साँच गावै ॥
जगत अरु भेषके पक्षमें ना पड़े, रहैनिर्पक्ष सोइ युक्ति योगी ।
फेरिमनपवनको घेरि पांचोपिसन,प्रेमसुखधामजहाप्राणभोगी ॥
जहाँआयो तहाँदुख है बहुघना, पक्षकीलाय सब जीव छीजै ।
कहैं कबीर कोइ संतजन सूरमा, होय निर्पक्ष रस अगम पीजै ॥
रामनिर्पक्ष निर्पक्षही साधु है, होय निर्पक्ष निर्पक्षही मोहीं ।
साँचको परसि अरुझूठको त्यागिये,साँचकी पक्षकहुँदागनाहीं॥
साँच सहजतिरे झूठमें वह मरे, झूठप्रपंच सू जगत माता ।
कहैं कबीर कोई संतजन जौहरी, छाड़ि प्रपंच निजनामराता ॥
भेषको पहरिकरि भर्म भूलमति, भेष पाहिर कछु सिद्धि नाहीं ।

काम अरु क्रोध मदलोभमाहीवणा,शीलअरुसांचसतोषनाहीं॥
कपटके भेष सो काजसुझैनहीं,कपटको भेषनहिं राम राजी ।
कहैंकवीर नरसांच करनीविना, कालकी चोटपौखायताजी ॥
भेषअबधूत अरुभूतमाही वसे, जीवकूं बावलाकरि दिआरे ।
नहिंबोलनेसुधिअरुचालनेखबरिनहीं,वशिनाहिंतहाँपांचवलाधियारे।
घाटियांदोयतहांतहुत साधनी,सांकरीतासुकेबीचमेंडलझियारे ।
कहैंकबीरनरपन्थको भूलि करि,सुरतिका सूतनाहिं सुलझि यारे॥
तिलकमाथे दियाहाथमें लाकड़ो,भजनका भेदतो नाहिंपाया ।
शीलअरुसांचसंतोषअन्तरनहीं,कनकअरुकामिनीजहरखाया॥
गूदड़ीपहिनकीरबगआसनाकिया,माछलीगटकनेकोसुरतिभारी ।
कहैं कबीरजबकाल गढ़घेरिहै, कौनगति होयगी जीवथारी ॥
हाथकेमाहि तो सुमरनी फिरत हैं, जीभहूं फिरतहैं मुखमाहीं ।
दास मनोहर तो चहुँदिशिफिरतहै,मनअरु पवनकी गमनाहीं ॥
निरखता भीति अरुगोरडीछतरडी,नागिनी माहिफौंकारमेले ।
कहैं कबीर यह भजन कैसे करै, नींदके आश्रय जीव खेले ॥
शील अरुसाँचसंतोषकाभेष करि,क्षमाअरुदयादिलमाहिधारो ।
झूठअरु कपट दिलते दूरि करि, सत्यका शब्द मुखते उचारो ॥
साँचकाभेष यह देख सतगुरु कहा, संत अनेक यों पार हूआ ।
कहैंकबीरसुखधाममांही मिला बहुरिविष धारमें नाहिं मूआ ॥
भेषकूँ पहिरि करि जगतधूतासवे,नामका आसरा नाहिं नेरा ।
औषधोंबूटियांलागिभर्मत फिरै, क्योंछूटिहै जीवकाभर्म फेरा ॥
मारता धातुहरताल तांबे सुरा, यंत्रा मंत्रा बुधि खोइ ।
कहैं कबीर नर स्वांगकोपहरिकरि, अंतको वेरियोंचाल्यारोई ॥
भेषकोपहिरीकरिजगतधूतासबै,एकनामनिर्वाणउरनाहिंआशा ।
औषधो बूटियांलागिभर्मत फिरै,क्योंछूटिहैं जीकाकालफाँसा ॥

और डहकायकरिआप डहका फिरै, जीवकाभलाक्योंहोयभाई।
कहैं कबीर नरस्वांगकोपहरिकरि, साधुकी राहनहिं हाथ आई॥
संतपूरा मिलै जीवको तारि हैं, वासना जीवकी दूर खोवै।
नाम उपदेश अरुभर्मनादूरिकारि,पाचको पलटि भवपार होवै॥
मिलै अध बेसरा इन्द्रिया स्वार्थी, जीववहकायकरिटूकखावै।
आपुभव सिन्धु औ जीवको लेवहै, कहैकबीर नहिं पार पावै॥
योगकीयुक्ति तौ मूँढ़ समझैनहीं,स्वांगकोपहिरिकरि सिद्धहूआ।
ज्ञानवैरागअरुदयाजानानहीं, वासना बीज तहां जाय भूआ॥
मान मस्तानअरुद्वेष माहीघना,आंठिअभिमानकीनाहिं छूटी।
कहैं कबीर सो पार कैसे लहै, माहिली बाहिली चारि फूटी॥
अंधसाधुपदछाडिसंसारमेंघीसपडा,कौंडियाँख्यालमोरतनखोया
जन्म अरुमरनकादुखसिरपरसहा, योंमोहकेमहलमें जीवसोया॥
अल्पही भोग अरुअल्पहीजीवना,ज्ञानविचारकछु नाहिंकिया।
कहैं कबीर यों बूडि तिषधारमें, छाडि सुखसारको जहरपीया॥
प्रेमके पंथको भूलि उलटापडा, बँवनकोखायकरि फूलिबैठा।
गयो वैराग अरु वन्दगी नावन्यो, कर्मके कीचमें गला हठा॥
नरकमें जानकी टेक गाढ़ीगही, दोष निदोंषको धार माही।
कहैंकबीर सोसुखसारकैसे लहै, छाडिसुखसारकूंजहरखाई॥
ताहि उगालकरि फेरले खातहै, देख मनकूकरा पडत भारी।
शद्ध अरु घेसला कानिमानै नहीं, शर्म सूझै नहीं होतख्वारी॥
जहाँका ऊपजातहां फिरिआव्या, मायकारूप फिरिनारिकीया।
काल अकरालकी चोट छुटैनहीं, कहैं कबीर धिरकार जीया॥
नामनिज नीरबिन पीरपावैनहीं, पाचसोरांचिकरिसांचखोया।
शहदकी बुन्दके रस प्रवसभया, यो मोहके महलमेंजीवसोया॥
कामअरुक्रोध मदलोभमाहीघना, कनकअरुकामिनीरंगराता।

कहैं कबीर सोइपार कैसे लहै, कालकी चोटकूं फेरि खाता॥
अंध ज्ञानवैरागअरु भक्तिको कहतहै,रहसतोएकनहिंहाथआवै।
फिरत कडछी जैसे पाकके बीचमें, रसके स्वादको नाहिं पावै॥
ज्योटिलीकोदेखिकरिदिल्लीकीनकलकहै,तासुकीनकलकोइऔरठाने।
कहैं कबीर कोइ भेद पावै नहीं, भेद तो देखने हार जानै॥
वेद वेदांत अरु कथतभागवतको, अर्थ अनुभवतणांकरतनीका।
ज्ञानवैराग अरु भक्तिको कहत है, रहतर नमाबिना सबैफीका॥
कामिनीकुबुद्धिउरमांहिकांटाघना, एकनामनिर्वाणउरनाहिंटीका।
कहैं कबीर सो पार कैसे लहै, कनकअरु कामिनी हाथबीका॥
रांड़िया खेलमें रांड़िया होयगा, खेल अवधूतका होय न्यारा।
खान अरु पान वशी तें जीवहै, कहो क्यों होयभौ सिन्धु पारा॥
चालताजभीपैअरुकहतआकाश का, कहोक्योंमानिहैसाधु सोई।
कहैं कबीर यह सतका शब्दहै, कहै ज्यो रहै अवधूत सोई॥
कहत वैराग अरुराग छूटै नहीं, पाच सोराचिकरि साँच खोया।
इन्द्रियास्वार्थी शब्दअनुभव कथै, पदसो बांधिकरिजीवखोया॥
नाम निर्गुण कि है रहतहै गुणमई, शिष्य शाखातणी भूख भारी।
कहैं कबीर जब काल गढ घेरिहै, कौन गति होयगी जीव थारी॥
राग अरु द्वेष की चौतरा साजि करि, तासु के ऊपरे जीव बैठा।
झूठको थापिकरि सांचको उत्थपै, अज्ञानकी कन्द्रा गरकपैठा॥
रागअरु द्वेषका चौंतराखादिये, ज्ञानकूदाल सोढाह भाई।
कहैं कबीर तब साधु पद पाइये, मुक्तिके महलमें सहज जाई॥
याच अरु तीनकोकरत निषेद नर,महलचौथा तणी बात गावै॥
रहतर जमा बिनाकहतर झूठीसबै, होय अवधूत तो कहत भावै।
जेनाम रसना रटैपापपलमें कटै,कनकअरुकामिनी त्याग दोई।
कामअरुक्रोधमदलोभ को त्यागि नर, कहैंकबीरयोंसहज सोई॥

कहतको सूर अरु रहतको कूडहै,रहतबिनकहतकिसकामआवै ।
रहतर जमा विना कहत झूठी सवै,पांच फूटा फिरै काल खावै॥
पांचको वसकरै नाम हृदय धरै, मुक्तिकी राहक्योंसहजि आवै ।
कहैं कबीर कोई सन्त जन सूरमा, कहत अरु रहततबएकभावै॥
ज्ञान वैराग विनु कूफ्रफंद टूटै नहीं, ज्ञान वैराग सोकुफ्रफंदटूटै ।
ज्ञान वैराग बिन जीव छूटै नहीं, ज्ञान वैराग सो जीव छूटै ॥
ज्ञान वैराग विन पीव पावै नहीं, ज्ञान वैराग सो पीव पावै ॥
ज्ञान वैराग बिन काज थावै नहीं, ज्ञान वैराग सो काज थावै ॥
बिनावैरागकहोज्ञानकिसकामका, पुरुषबिननारिनहिंशोभापावै।
स्वांगते साहु अरु गति है चोरकी, करै तब चोरिया शिर कटावै॥
भेष तोसाधुअरुकुबुधि माहीघणी, कुबुधिकोकोथलीनाहिछूटै ।
शील अरुसाँचसंतोषअन्तर नहीं, कहैं कबीर तव काल कूटै ॥
कहनको साहुअसगतिहै चोरकी,साहुजी कहत नहिं शर्मआवै।
झूठही कहत अरु झूठही रहतहै, रैन दिन झूठमें जन्म जावै ॥
मानके आसरेफूलिकरि वैसिया, इन्द्रियास्वादमनमाहिभावै ।
कहैं कबीर ते साहु क्यों बोलिये, यमरायके खेसले खूब खावै ॥
ज्ञान वैराग बिन शब्द चालैनहीं, चढ़े कमान बिनु तीर कैसा ।
ऊज्वला दीसता द्रब्यखोटकारुपिया,तासुकाकौनगनिदेइपैसा ॥
कठिन करतूतिपुनि कहाका होतहै, रहतर जमांबिनाशब्दझूटा ।
कहैं कबीर जन काजतवही सरै, पाँच मन मनसा फिरै पूठा ॥
तुरंग रागातलै कान मोती झुलै,पाँच हथियार तहां बांधिसोई ।
मालमोतियातणीसौजआछावनी,पणिबिनाकारणरहेपुरुषकोई॥
नारि सुख नालहै गर्भ तो नारहै, बिना बैराग तो शब्द काचा ।
कहैं कबीर ज्यों पुरुष हैहीजड़ा, बिनाकरतूतिनहिंपुरुषसाँचा ॥
शब्द अनुभव करे माहिप्रचोधरे, मन अरु पवनकीयुक्तिआनै ।

ज्ञान चौकस कहे सैन चौथे गहे, सीस सतनामकी छाप ठाने ॥
कनक अरु कामिनी रेख माहीवणी, भायंतृष्णातनीमीटिनाहीं।
कहैं कबीर सब झूठ ही बोलना, आप है कालकी डाठ माहीं ॥
पवनकोसाधि करिकरतउपाधिनर, वासना बीजतो नाहिंछीजै।
दूध अरु भातफिर ओगरामागता, दास मनोहरका लाडकीजै॥
कहत हैं योग अरुको गहत हैं, योग कोमूल तो हाथ नाहीं।
कहैं कबीर नर करत आजीवका, खान अरु पान है चित्त माहीं॥
दर्द मन्ददर्दके चोटको जानि हैं, वे दर्दको चोटकीखवर कैसी।
पीवकी चोटको बिरहनी जानिहै, रैनदिन पीवमें सुरतिवैसी॥
श्रवणअरुनयनसुखवैनमें बसत है, पीवबिनऔरनहिंबातआवै।
कहै कबीर यह विरहनी अंगहै, रैनादिन निरखता पंथ जावै॥
नीर बिनुमीनअरुचन्दचकोरबिन, सीपकोस्वातिकीएकप्यासा।
धरणिके नीर नहिं नेह पपीहरे, बिरहिनी एकयोंराम आसा॥
नारिसे पुरुष अरु पुरुषसे नारि है, सुरतिकीडोरज्योंएक होवै।
कहैं कबीर यह विरहनी अंगहै, रैनादिन पीवका पंथ जोवै॥
योगकी युक्तिको रोगिया नालहै, रोगकी खानितहां योगनाहीं।
कूडिया कथिया काज सीजैनहीं, कहत कपूर अरुहींगखासी॥
नाम निर्वाणतहांकामकहाँपाइये, कामनाकुबुधितहांनामकैसा।
कहैं कबीर नर जहरको खातहै, शब्द अनुभव करैफूलिवैसा॥
योगकी युत्तिकोरागिया नाल है, रोगकी खानि तहांयोगकैसा।
कनकअरुकामिनीखानगहिरीखरी, तासुके ऊपरेजीव वैसा॥
मूलिया खायकरि करतउदगार नर, कहत कपूरकी बासआवै॥
कहैं कबीर एता दृष्टि देखय, कनक अरु कामिनीजहर खावै॥
शब्दको मानिहै कौन प्रमाण है, वेदांत सिद्धांत तहां एकमेला।
त्याग वैराग अरु शीलसतोषबिनु, करतज्योंठेलियाबालखेला॥

पीवको परसता कष्ट बहु होतहै, पीवकी सेजनहि खेलहांसी।
कहैं कबीर रहतर जमा बिना, शब्दअनुभवकियाबांधिजासी॥
त्यागवैरागअरुहरतरजमाबिना, शब्दअनुभवकियाकौन मानै।
नूर अरु तेज मन पवन कूँ कथतहै, महल चौथातणी बातठानै॥
खेत निपेदे हुई चौडही जानिये, शीलअरुसाँच संतोष आवै।
कहैं कबीर एता दृष्टि देखिये, वेदांत सिद्धांत सब साधु गावै॥
सोवता होय तो जागि हैं बापुड़ा, जागतासोवता कहाँ जागै।
मान मनमाहि अभिमानज्ञानीहुआ, शब्दअबधूंतकाकहाँलागै॥
कहतअरुसुनतसबअवधिपूरीभई, अनुपाइनीभक्तिनहिंहाथआई।
कहैं कबीर ये ज्ञान सब थोथरा, जीवका भला क्यों होयभाई॥
कहतअरुसुनत सबअवधिपूरिभई, उलझिसुलझिनहींएकआंटा॥
शीलअरुसांचसंतोषअन्तर नहीं, कामनाकुबुधिउरमाहि काटा॥
अग्निकेसंगज्योलाखपघिलतचलै, योशब्दकोसुनतटुकचेतहोवै।
कहैंकबीनरपडै जबआंतरा, लाल की लाखनहिंउलटी जीवै॥
करत आचारअरुखबर तनकी नहीं, सदा नौ द्वारमें बहै आमें।
नाकमें रीट अरुआखमेंकीचड़ा, सदा ठेठी बहै कान तामें॥
हाडमुखलार अरुमूत्र विष्ठावहै, करत अभिमान तू देख जामें॥
कहैं कबीर नर चेत सोवै कहाँ, होयज्योपाकभजिसन्त नामें॥
फोडिपाँषाण को दूजी हरि बीच करि, आपकर्ता हुआ देखु दूजा।
तोडि सरजीव अरु पूजिनीर्जीवको, कहोक्यो मानिहैरामपूजा॥
कर्म मार्थ चढ़ें सांच सूझै नहीं, मानताहै मैं करत पूजा।
कहैं कबीर नर अंध चेते नहीं, फूटि चारो गई पडा दूजा॥
जागती जोति तहाँ छूत लागे नहीं, छूत लागैं तहाँ भर्म भाई।
कर्म अरुभर्ममें जीव जूझै सबै, चार अरुअसी कापडा खाई॥
शोचके शब्द का भेद पावै नहीं, इन्द्रिया स्वादसबजीवलागा।

कहैं कबीर तहाँ जागती जोतिहै, कर्म अरु भर्म सब दूर भागा ॥
हदके जीव सो बोलना कौनसा, बात बेंहदकी कहां जानै ।
प्रवृति प्रपंच में रैन दिन जूझना, शब्दअवधूतका कहा मानै ॥
दृष्टिदीसै तहाँ कालका जालहै, नामनिर्वाण नहिं हाथ आया ।
प्रेम प्रकाशका भेद पायानहीं, कहैं कबीर तहाँ सहज विलाया॥
आपनी आपनी खालमें सबमस्तहै, चार अरुअसीकाजीवसारा।
करत आचार तहाँ गरकमनहोयरहा, होयउदास नहिंहोय पारा॥
सूकरा कूकरा तन को पायकरी, शूकरा कूकरा भोग भावै ।
कहै कबीर यों नर्क मैं झूलना, बिनासत संग नहिं पार पावै ॥
इश्क साईं तहां तर्क वजूदहै, इश्कवजूदतहाँ नर्क सांईं ॥
योगिया यतियां शेष सन्यासियां, भेषहू देखिये बहुत माही ।
बिनाही वन्दगीविहिस्त पावैनहीं, बन्दगीकरत नहिं खेलहासी॥
कहैं कबीर ये इश्क वजूद का, दोज़खकी राह को लिया जासी ॥
तर्क वजूद सो इश्क सांईं करो, छाडि बदफेल रस एक पीजे ।
मनीको मारिदिल माँहि नेकी गहो, भिस्तिकीराहकूँसोधिलीजे॥
सबआपपैदाकियाघटनहींफोडिये, फर्जन्दसबआपका देखभाई।
कहैं कबीर यह सतका शब्दहै, विहिस्तके राह को सहज जाई॥
मियांजीजीवतामारिकरिकहत हलालहुआ, मुर्दारनहींखूबखाना।
मिहरिको दूरिकरिकहर दिलमेंधरी, दोज़खकीराहकोसहीजाना॥
नफ़स के वास्ते कुफ़ बहुतकरतेहौ, ज्वाब दर्गाहमें भरै कैसा ।
कहैंकबीर इन्साफतबहोयगा, मार दर्गाह में खूब बैसा ॥
मियाँजीराहकोछाड़िवेराहक्योंचलतहौ, ज्वावदर्गाहमेंनाहिंआवै ।
करत बदफेल दिन चार केवास्ते, देखि वजूद क्यों शाक खावै ॥
मुसलमानईमानसोपाककमालभरो, जीवकोमारिकरिनाहिंखाना ।
नफ़सशैतानकोमारिकरिदूरिकरबावरे, कहैंकबीरयोंभिश्तिजाना॥

मियाजीआवकानीपनाहक दर्गाहमें, पिशाबकानीपनाहक्कनाहीं।
कहर कोदुरि मिहरदिलमें धरो, यो बन्दगी करत कबूल सांई ॥
पांचविसमिलकरो पाकरोजा धरो, गुस्सेका गला तूका भाई ।
कहैं कबीर यह सत्यकाशब्दहैं, विहिस्तकी राह कूं सहज नाई ॥
जैन के मांहि तोखैन पैदा हुआ, खैन कारोगतोजाय नाहीं ।
कण बिना तूसडा कूटतेहैंसदा, कर्म में लीननहिं सांच पाई ॥
दयाको कहै अरु सदा निर्दई रहै, तोडि सर्जीव नरजीव पूजे ।
कहैं कबीर यो जन्म का आँधला, सीच अरु झुठ नाहिं सूझै॥
खैनके रोगते श्वांस बैठेनहीं, श्वांस बैठे बिना कहां साता ।
नामनिजऔषधीनिकट न्यारीरही,छाडिनिजऔषधीकर्मराता॥
आप प्रकाश बिन कहानहीं उपजे, कालके चक्रमें खाय फेरा॥
कहैं कबीर यों जैन में खैनहैं, नाम निर्बाण नहिं निकट हेरा॥
कौड़ियांकौड़ियांजोड़ीकरिएकठी, खायखर्चेनहीं मूलपापी ।
धरै घर माहि फिर ब्याज बढो करै,रैन दिन माहिले वुरीथापी॥
दोयगा सर्प अरु भूतभर्मत फिरै, खाय खर्चे नहीं मूल भाई ।
कहैं कबीर जबज्वाबकैसे भरै, यमराज के घेसले खूबखाई ॥
शब्दऊपदेश मैंसबन कूँ कहतहूं, समुझिकरिआपनासुखलीजे ।
रागअरुद्वेषकूंदूरिछाड़िकेदूरिसबछोडिके,आपनेजीकाभलाकीजे॥
आयसतसंग में कुबुधिको दूरिकरि, सुबुधिसंतोषउरमाहिधारो ।
कहैं कबीर यह शब्द निर्दोष है, आपने जीवका काज सारो ॥
टेरि पुकारि सब जीवसों कहतहो, सत्यका शब्द तुम गुनलोई ।
गुरूदेव करतूत गुरु देवही पाइये, शिष्यकरतूतसो शिष्यहोई ॥
शिष्य दुर्बुद्धि गुरुदेव क्या दोषहै, शिष्य अवधूतगुरुवार वैसा ।
करै करतूति सो आपनी पाइहैं, शिष्यगुरुदेवका काम कैसा ॥
शब्द सांचा कहूं गुतका कामना, सांचके शब्दको लाज कैसी ।

आप अरु बाप गुरुदेव अरु शिष्यहै, करै करतूतसो पायतैसी ॥
सांचके खेलकूँ सांच मीठा लगै, कपटके खेलकूं सांच खारा।
कहैं कबीर ये एकठे ना रहे, दिवस अरु रैन प्रकाश न्यारा ॥
आपने आपने सांचसो खेलना, कपटकाखेल नहिंकामआवे।
कपटके खेलसो काम कोई नासरै, अंतकी बेरदुख प्राणपावे ॥
बाहिरा भीतरा साफ दिलको करो, मैलकोधोय रसराम पीजै।
दास कबीर यों कहत पुकारिके, कपटकी कोथली दूरि कीजै ॥
सांच करणी करै सांच मुखऊचरे, दम्भ अरु कपटको दूरिडारे।
शील अरु सांच संतोष हृदयधरै, कामअरुक्रोधमदलोभमारे ॥
कनकअरु कामिनी त्यागि सांई भजै, रामतेजे जनाराम गावै।
कहैं कबीर जनपार तेही लहै, कालकी चोट फिर नाहिं खावै ॥
सांच करनी करै दम्भकूं परहरै, सांच करतूतको संत गावै।
सांच करनी रहै सांच मुखते कहै, सांच दर्गाहमें दाद पावै ॥
दया अरु शील संतोष सांचे गहै, झूठ दर्गाहमें दाद नाहीं।
कहैं कबीर जन्म झूठहै जर्दरू, सांचके बीच है आप सांई ॥
सांच करनी बिना काज सीझेनहीं, झूठप्रपंच सो जीव राजी।
मानमस्तान अरु खानहै लूनकी, कालकी चोट यों खायताजी ॥
शब्द चर्चा नहीं ज्ञानहै घेसला, देखि शैली करो पेट मोटा।
कहैंकबीर योंजानि जड़होयरहो, सुमिरिसतनाममतखायखोटा ॥
मिलै जो साधुतहाँ बोलना खूबहै, होय बकबादतहाँ ज्ञान टूटै।
साधुके बोलने प्रेम सुख होतहै, मूढके बोलने काल कूटै ॥
रैनदिन चित्तकी वृत्तिकूं घेरिये, युक्तिजानै तिको युक्त योगी।
कहैं कबीर मनपवन कूं फेरिकरि, सदाआनन्दरस नामभोगी ॥
सबकपटकूं दूरिकरि सांचकरणीकरौ, कपटकरतूतिनहिंपारपावे।
कपटकरतूतसो काज कोई नासरै, सांचकरतूतसो काज थावे ॥

सांचकरतूतितहांआप हाजिर खड़ा, कपटकरतूततहांआपनाहीं।
कहैं कबीर सब संतजन कहतहैं, वेद कितेबहू देख माहीं॥
नामनिर्गुण कहै रहत है गुणमई, मुखसूंकहत नहिंलाज आवै।
कामअरुक्रोधघटमाहियोधासबल,ज्ञानअरुध्याननहिंरहनपावै॥
जासुके झूपडे लाय लागेसही, झूंपडा मांहि क्या रहै भाई।
क्रोधसी अग्नि तहाँ देखु प्रकटभई, कहैंकबीर यह कैसी कमाई॥
कहतभी खूब जो रहितरजमारहै, कहतभी खूब जो सांचबोलै।
कहतभी खूब सबत्यागि साईंभजे, कहतभी खूबमनमैलखोलै॥
रहतर जमाबिना नफा नाहींकछु, कहा आकाशकाशब्दबोला।
कहैं कबीर सुनु शब्द सांचाकहूं, कहा जो प्याजकाछोतछोला॥
सांचके शब्दको सुनत निन्दाकरे, झूठके शब्दसूं प्यार होता।
झूठ अरु सांचएकठे क्यों रहे, जमीं आस्मान नहीं एकहोता॥
प्रवृतिप्रपंचसब जमींका खेलहै, गुणातीतअवधूतका खेलनाईं।
कहैं कबीर कोइ रीझभावेखीझिहै, कहोंगा सांच नहिंझूठभाई॥
सांचके शब्दमें पक्ष कोई नारहै, पक्षतो सांचका शब्द कैसा।
सांचके शब्दमें पाप लागे नहीं, झूठके शब्दमें पाप वैसा॥
साधुकी चालतो सांच सबकहतहैं, झूठतो साधुकीचालनाहीं।
कहैं कबीर यह खेल आकाशका, साधुपद दूरकहूंनिकटनाहीं॥
सांचका शब्द तो एकही बहुतहै, बारही बार नहीं बकनाजी।
पाषाणकेबीचमें तीरलागेनहीं, यों मूढसो बहुतनहींझखनाजी॥
रैनदिन होत घनघोर वर्षाघणी, चीकटे घडे नाहिं पुनगलागै।
कहैं कबीर तहाँ कर्मकी जाडहै, जीवजड होरहा कहां जागै॥
पाषाणके बीचमें तीर बेधेनहीं, बाहनेहार क्या दोष भाई।
सुनतहि सुनत सबअवधि पूरीभई, इन्द्रियाद्वार मनजहरखाई॥
कर्मसन्नाहकी कडीसजडी जड़ी, ज्ञानगोली तहाँ नाहिंलागै।

कहैं कबीर तहाँ कर्मकी जाडहै, जीवघोर निद्रापड़ाकहाँजागै ॥
आपनी २ बीज अंकूरहै, करै करतूति सो पाय तैसी।
बोई है आम तो आम्बफलखाइहै, बोई है बबूलतो सूलवैसी ॥
पापअरु पुण्य दोउबीज अंकूरहैं, वाहिसो बीजफलहाथआवै।
कहैं कबीर ये सतका शब्दहै, करै करतूतसो नाहिं जावै ॥
सदगति जीवको भलीमति ऊपजे, दुर्गतीजीवकी बुरीआवै।
सदगति जीव सुखसार साई भजै, दुर्गतिजीवमिलिजहरखावै ॥
सदगतिजीव सतसंगजनबन्दगी, दुर्गतिजीव विषधार पैसा ॥
कहैं कबीर ये बीज अंकूर है, बाहिहै बीज फलखाय तैसा ॥
बुराभी आपना आपही करतहै, भलाभी आपना आप सारै।
आपही आपको पारले ऊतरै, आपही आपको बोरि मारै ॥
आपहीउलझिकरि बहेविषधारमें, आपहीसुलझिहरिनामलागै ॥
कहैं कबीर येभावसब आपना, आपही सोयकरि आपजागै ॥
जीव अज्ञान सबअंध चेतै नहीं, बहै विषधारमें खाय गोता।
पाप करनी करै नाम उरनाधरै, पापके बीजसों फिरै रोता ॥
यार आशनासूं प्रीतिअतिकरतहै, रामके जनोंकी करताहांसी।
कहैं कबीर नर ऊबरे कौनविधि, मारिहैं काल गलडार फांसी ॥
मोहके वृक्षमें जीव सब मगन हैं, देतहैं अंड तहां हर्ष मानै।
काल अकराल तहाँ रैनदिनतकतहैं, चलतहै चक्रतहँ सकलभानै॥
राव अरुरंकसबएकनाके चले, नहिंपावअरुपलककीखबरजानै ॥
कहैं कबीर सोइ संतजन ऊबरे, रैन दिन रामही नाम गावै ॥
मोहिके माँहि सबजीव मस्तान हैं, खान अरुपानमें मगनहुआ।
नारिसूंपुरुषअरु पुरुषसूंनारिहै, अरसअरुपरसमिलि नाहिंजुआ॥
नारिके रैनदिन ध्यान है पुरुषका, पुरुषको ध्यान हैं नारि केरा ॥
कहैं कबीर यों जीवसबउलझिया, कहो क्यों छूटि है भर्म फेरा ॥

नारिकी वासना पुरुषकी मारिहैं,पुरुषकी बासना नारि खोवै ।
सुरतिमनपवनकोसमिटि साईभजे,जन्मअरुमरनतबनाहिहोवै॥
शीलअरुसांच संतोषकीसिहजले,क्षमा अरुदया दिलमाहिंधारै॥
नारि अरु पुरुषका काम कैसारहा, कहैं कबीर सो आप तारै ॥
जन्मअरुमरनतोभजनविनुनामिटै, कछुबांटकरिखायतोहाथआवै
रावअरुरङ्क सबएक गैले चले, विनाहरि भजन सबबादजावै ॥
बेगही चेतले बावरे मूर्खा, जीवते जीव कछु हाथ कीजै ।
कहैं कबीर नरचेत सोवै कहां,होयगा ढोड़ तब प्राण छीजै ॥
देहतो देख मिलजायगी खेहमें, देहसों काज कछु कीजियेरे ।
रामका भजन अरु जनोंकी बन्दगी, देहधरि लाहडालीजियेरे॥
चालती घोड़ियाकाज कछुकीजिये,कौड़ियासाथकछुनाहिंजाई।
प्राणके छूटते पलकमें पारकी, कहै कबीर सुनुचित लाई ॥
बीचउजाड़के पुरुषसकभूलिया, सो भर्मताभर्मता कूपपाया ॥
कूपके माहितहाँ नीर तिन देखिये,तिसनीरकेऊपरे लीलछाया॥
पीवना होयतो पीयले बावरे, यों विनाशिहैं नीर थिर रहै नाहीं।
कहैं कबीरफिर नीरनहिं पायहौ,बहुरि बे बानके बीचजाई ॥
दोयदरियावके बीचएककाज है,तासुके बीच एक पुरुष ठाढ़ा ॥
एकदरिआवमें सही सो झूलिहै, करो कोइ बन्दगी करो जाड़ा।
जाड़ितो जन्म अनेकके जीवको,बन्दगीकरतसोइ पुरुष पूरा ॥
कहैं कबीर कोइ ब्रह्मदरियावनें, रहत भवसिन्धुते सदा दूरा ॥
घड़ीघड़ीनरकहत पुकारिके, पलकही पलक नरआव छीजै ।
चेतरेचेत अब अंधसोवै कहाँ,नामभजि नामभजि काज कीजै ॥
आगिलगायाअरुपाछिलाथिरनहीं, बहुरिउपजेसोइ फेरजासी ॥
दास कबीर यों कहेपुकारि करि,नामभजनाम नहिंकालखासी ॥
अंधचेते नहीं अवधि सारीगई, शीसपर कालका हुआ डेरा ।

पलटा साजकाज कोईनासरा, गिर्देसे कोट सब आईघेरा ॥
नहीं श्रवणसुनै अरु नैनभी झरत है,चालता पांवमेंपरत आटी।
कहैं कबीरकोइकान मानैनहीं,जराजब योगनी गहा माटी ॥
चेतरेचेत अबजढ क्यासोरहा, सठसब अवस्था जाय बीती।
आययमराय जबचहुँदिशीघेरिहै, होयगी तोहिमें बहुत फजीती ॥
देखऔसानयह फेरिपावैनहीं, सुमिरि हरिनामसबतज अनीती।
कहैं कबीरसंसारकुल स्वार्थी, नहीं प्रमार्थी छाड़ प्रीती ॥
चेतरेचेत अबअंध सोवै कहां, खोजगुरु ज्ञानमनजागमेरा।
तातअरुमातसुतबन्धुयुवतिसखा,कहोकालकीचोटमेंकौनतेरा ॥
ये मिलेसब स्वार्थीनाहिंप्रमार्थी,तासुके बीचतैं किया डेरा।
सबठगोंकावास है झूठविशवासहै,काटिमोहफांसीगहोनाममेरा ॥
कहैं कबीर निजनामको सुमिरिले, बहुरि नहिंहोय संसार फेरा ॥
संतसबकहतहैं अंधचेतै नहीं, मोहके महलमें जीव सोवै।
देखहीरो जन्म फिर पावैनहीं, काँचके राचने काह खोवै ॥
वस्तुनाहिं पाइहै बहुरिपछताइहै, सीखसुनि लेहु सतमान मेरी।
कहैं कबीरजबकालचपेटिहैं, होय छिन एकमें खाक ढेरी ॥
भर्मता भर्मताहाथहीराचढ़ा, सोकौड़ियामाहि नै काहि दीधो।
देखहीरोजन्म फिरि पावै नहीं,बड़ीनिधि पायकैतै कहाकीधौ ॥
विनशिहैं पलकमें आशनाहींकछु, रामभजुरामभजुकाज सीजै॥
कहैं कबीर नरखायखोटामति, मोहके जालमें कहां छीजै ॥
देखनिर्मोलको हाथहीरोचढ्यो, चेतरेअंध अब कहां सोवै।
भजोभगवानअरुकरोजनबन्दगी, कौड़ियाख्यालकणिकाहिखोवै
सुखसारहृदयधरो छारको परहरो, सुरतिसुरझाय जो मुक्तिपावै।
कहैं कबीर नरचूकअवसानको, दावकोखोय करि कहां रोवै ॥
खतामत खायतू चेतरे बावरे, शीसआई जरा नाम लीजै।

सत्यकाशब्दसब संतजन कहतहै,कोटिभ्रमजाल भाजिरामजीतै॥
देहतो देख मिल जायगी खेहमें, ये मिलसबस्वार्थीसगीनाहीं।
कहैं कबीर जब काल गढ़ घेरि हैं,तब आपने आपने पंथजाही
देह तो देत है तोहिंचिताघणी, सुमिरिहरिनामअबचेतअंधा।
करतबहुयतनयहविनशिहैपलकमें,यादकरिपीवयमकोटिफन्दा॥
दुखको रूप अरुराशि औगुन भरी,यादकरहक्कसुखकहाभूल्यो।
कहैं कबीर योदेहसोतरक करि,सदा सुख सिन्धुके माहिझूलो॥
देह दुख रूप सुख लेश मात्र नहीं, देहसुखरूपजोनाहिंलागै।
जन्म अरु मरनकीत्रासतबहींमिटै, काल कांटासवैदूरिभागै॥
धरि इस कामकोकरहारिबन्दगी, मुवाविषधारमें जीव सारा।
कहैं कबीर कोइ कोटिमें ऊबरा, परसि निर्वाण पदहुआन्यारा॥
गर्भ बासके बीचमें देख रक्षा करी, आबकी बूंदसो पिंडकीया।
अन्न पानी सब भस्म हो जातहै, प्राण सूक्ष्म तहांराखिलीया॥
उबत दशमांस तहां पोना ले दिया,कौलकेबोलकरिजन्मपाया।
कहैं कबीर नर फूलि संसारमें, बिसरि कर्तारको जहर खाया॥
दीद बरदीद प्रतीत आवै नहीं, दूरिकी आश विश्वास भारी।
कथा अरु कबित श्लोक रसरी बड़ी, कथैबहुभांति बूड़ेअनारी॥
हृदय सूझै नहींसन्धि बूझै नहीं, निकटकीबात ले दूर डारी।
तत्त्वको छाड़िनिःतत्त्वको सब कथै, भर्ममें पड़े सब भेष धारी॥
जटाधारी घने यती योगी बने, पहिर मुद्रा लियेकानफारी।
एक मौनी रहै एक त्रक त्यागीरहै,एक दराडी रहे एक ब्रह्मचारी॥
एक नागा रहै सर्व लज्या तजै, एक छेद वजूदको नाथडारी।
एक बांधिपग घूँघरूनिरत करता रहै, स्वांगकेनेकरे भर्मभारी॥
एक आकाशद्रष्टा रहे एक मौनीरहै, एकउर्द्धबाहू रहै नखधारी।
एक भोगी रहै भोगभोगत रहै,एक बजरकछोटी कसि काम जारी॥

एक पग बांधिके अर्द्ध झूलत रहै, एक ठाढेश्वरी कष्ट कारी ।
एकगर्भमरते रहेपाश्चाग्नितपतारहे, एक बैठिजलसेजआसनआरी॥
कहाँ लौं कहूँ बहु रूपकोपेखनो, आपआपन यों सबनेबिसारी ।
एक अन्न भोजन तजैदूबरंगनरहै, एकदूध भोजनकैरदूधाहारी ॥
एक लूनछोडिके भये अलूनिया, एक बैठिके गुफामेंलायतारी ।
एकतिलकमालादियेटोपचोलालिये, एकगुदड़ीपहिरिकेरिडिम्भधारी
एक पूजिकै मूर्तीगर्भ भारिधरी, एकशंखधुनिआरतीजोति बारी॥
सेव कीन्ही सहीदेवचीन्हानहीं, आत्माछोड़िभये जढकेपुजारी ॥
पूजिपाषान अभिमान अंधाफिरै, सतचैतनसूंबीचयारी ॥
योगी पण्डित बडे सर्वगीता पढै, भर्म की भीतिनहिंटरतटारी॥
कहैं कबीर कोइ सन्त जन जौहरी, मेटियमफन्द उठे संभारी ।
इतने विटम्ब सो वस्तु न्यारी रही, ज्ञानकीसुरतिसोल्योविचारी॥
अगमकोगमकरोध्यानहृदयधरो, चढशून्यकीशिखरकराजीकेरभाई
फिक्रकोत्यागिनिजनामसो लागिकरि, सुषुन्ना ताँत तूटू बजाई॥
गगनअरुधरनिबिचख्यालअद्भुतरचा, गैवकीकलासतगुरुलखाई।
कहैं कबीर अवभाग पूरन भया, ज्ञान के मौज वैराग पाई ॥
दौडदौडरेबालकाखबरिकरदर्बारमें, अलमस्तअवधूतफकीरआया
जाकेछाप अरुतिलकगलमाल मस्तकबना, सत्तकी एकआवाज लाया ॥
खोलीपटदेखले जगमगीजोतिहै, नादअरुबिन्दुगढजीतकाया ।
कहैं कबीर सर्वांग अविगत मिला, भर्मको छाडिगुरुज्ञानपाया॥
उलटि यंत्र धरो शिखरआसनरो, देखसो देव दर्गाह माही ॥
जहाँ तेल बाती बिनाअधरदीपकबलै, युक्तिकी जोतसो घटैनाहीं।
जहाँतालतांतीबिनारागरमतासुना, पावाबिननिरतझंकाररखाहीं ॥
हाथबिनपांवबिनशीसमस्तकबिना, हुकुमहथियारबिनफौजधाई।
जहाँजत्रतेजीनहींगैदछाजेनहीं, युद्धमंडा तहाँ घाव नाहीं ॥

पांतबिन पेड बिन वागडम्बररहे, पालिबिनसर्वेहिलोलखाहीं ॥
निरबिनकमलतहँफूलिनिर्मलरहै, पोखबिनभँवरगुंजारखाही ॥
नेवबिनमहलकेदशोछाजाबना, रूपबिनदेव जहाँ मौज पाई ॥
कहैं कबीर कोइनिरतिलोनिराखियो, पपिलकेपंथमें गयंदजाई ॥
दरसबिनदीदपरतीतिआवैनहीं, पार की कहैं सब झूठ झाई ॥
हकारसकार झनकार लागी रहै, बैठमनतख्त जहाँ तत पाई ॥
रूपबिन रेख जहाँ राग रमतासुना, तालमृदंगपर टेर खाई ॥
अजरअरुअमरकाअगम बासावसे, नादअरु बिन्दकीखबरपाई॥
सोधि अस्थूलरहमान जबभेटिया, नामकी छापजबजायखाई ॥
जहाँ फूहिरी परबोकरैअमीझरबोकरै, प्रेमकीधुरीसो घटैनाहीं।
आपकी तापधरि काललागैनहीं, कालकोमारि जंजालखाई ॥
शून्यकी ध्वजा जहाँ फरकखाबोकरै, सेतहीगगन गुंजारखाई।
अगमअरु निगमका खूबछाजा बना, रूपबिनदेवजहाँगमपाई॥
अखंड अपार जहाँ तारलागारहै, तारमें मिलै सो पार होई।
भर्मको छेकि प्रब्रह्मको भेटिकरि, सुरतिको काटिब्रह्मांड मांही ॥
कोटके कंगुरे ज्योति झलमलकरै, माझरी शून्यमें फरकखाई।
दासकबीर निर्वानपद परसिया, मिटिगया झूठझकझोर आई ॥
सतकबीरका सेतही घर रहै, श्वेतही शून्यमें रमै भाई।
जहाँ यती औ सतीतो निरतकरबोकरै, प्रेमरसपीवै सोघटैनाई ॥
ताल मृदंग अनहद लागा रहै, सुषुम्नासाधि संतोष पाई।
विहंगमशब्दजहाँ फरकखावो करै, शब्दकीखोजकोइसंतलाई ॥
जहानकी टेक अस्मान लागीरहै, सहजमें भँवरगुँजार खाई।
उलटिकरिपवनतहाँ गगनलागीरहै, लूमझरलालआकाशलाई ॥
देखिधरिध्यान जहाँइंद्र गवनीकरै, अमीका कुंड हिलोलखाई।
शब्दका चांदना अगम लागारहै, उठै झनकार ब्रह्माण्डमाई ॥

दासकबीर लौलीन लंका चढे, पलककी दरसमें झलक पाई ॥
शून्यकी शिखरपर जिकरऐसी, घटा घंघोर संजोर बाजे।
शब्दकीआवाज जहांगाज बानीकहै, भँवर गुंजारनिशिदिनगाजै ॥
हीरा अरु लाल अबेध मोती पडे, श्वेतही शून्यजहाँ संतजूझै।
कहैं कबीर ये पंथहै अगमका, सोहंगमें सुरति सतलोक सूझै ॥
वाहवाहसिदकेजाऊंमैंमुर्शिदकेकदमोंपर, एकहीख्यालमेंनिहालमनकियाहै।
पीरमेराखासामैंमुरीदहूंताका,करिकेमिहरदस्तपंजाशिरदियाहै ॥
ज्ञानकेकमानबानमारतेहैंतानि२सोइजनजानैजाकीसुरतिकरिवारवारहुआहै
अक्लिकीगिलोलकारिनिजमनठहरायदेख, वैंतोरहमानयारमुवाहैनाजिया है
साईसर्वज्ञहराओर वेकैववेऐब,कहैकबीर वैतोसाहिबमहबूबमिया हैं ॥
बदनबिकशत खुशालआनंदमें, अधरमेंमधुरमुस्कात बानी।
सतडोलैनहीं झूठबोलैनहीं, सुरति औ सुमतिसोसत्यज्ञानी ॥
कहतहूँ मैं ज्ञानउपदेश सबनसूं, देत उपदेश दिलदर्दजानी ॥
ज्ञानकेपूर है रहनिके सूरहै, दयाकीभक्तिदिलमाहि टानी ॥
और सो तोडिलैएकसोरत रहै, ऐसे जन जगतमें विरलाप्रानी ॥
ठगवटपार संसार भरपूर है, संत हंसकी चालकहाकागजानी।
चंचल चपल चित्त रंग हैं चीकने,वातमें दूरस दिलकपटजानी॥
पेटमें कतरनी दया जिनके नहीं,कहतमें सुध मन बगध्यानी।
जीवकी दुर्मती भर्म छूटै नहीं, जन्म जन्मात्र पड़ेनर्कखानी ॥
कौवा कुबुधि सुबुधि पावै नहीं, कठिन कठोरविकरालबानी ॥
अग्निके पुंज है शील शीतल नहीं, विष अमृत लिये एकसानी।
कहा भयोसाखीकटो दृष्टिउभरीनहीं,सत्तकीचालबिनुधूरधानी ॥
सत सुकृतकी साँची रहनी सही, कागबुग अधमकीकौनवानी।
कहैं कबीरकोइविरलाजनसुघडहै, सदाशब्दध्यानसुनैनिशानी ॥

छाडिधोखादियाआपनिश्चयकिया, आदिअरुअंतसाहबएकजानी
सुरतिके थाकते निरतभी थाकिया, निरतके थाकतेशेषकंपा ॥
शेषके कंपते धरनिभी धसमसी, धरनिके धसमसे मेरुडोला ।
मेरुके डोलता शब्दसायरमिला, उर्द्धमें शब्द घन घोरगाजा ॥
बखत बखतीमिली कर्मयारी जुरी, वाधिपाताल आकाशफेरा ।
सत कबीर तहां ब्रह्म चौरी रचा, सत साहब तहां लियाफेरा ॥
अधर दरियाव दर्गाहकुछअजबहै, निर्मली ज्योतिजहांखूबसाई।
ज्योतिके ओट यम चोट लागैनहीं, तत झँकार ब्रह्माण्डमाहीं ॥
ज्ञानका बागजहांगैबका चाँदना, वेद कितेबकी गम नाहीं ।
खुल गयचश्मजबहश्मसब पशमहै, दीनअरुदुनीका कामनाहीं॥
कहैं कबीर यहभेद विरलालहै, झलमलैज्योतिजहांझूलैझाई ॥

इति आत्मबोध रेखता प्रथम भाग समाप्त ।

सत्य

अथ जैनधर्मबोध प्रारंभः।

भारतपथिक कबीरपंथी–
स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें

छापकर प्रकाशित किया।

संवत् १९६३, शाके १८२८.

Printed at the "Shri Venkateshwar" Steam Press, Bombay.

सत्य नाम ।
श्री कबीर साहिब ।

सत्यसुकृत, आहिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, सुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतायन, धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोध गुरुवालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, कदयान की, दया वंश-व्यालीसकी दया।

अथ श्रीबोधसागरे

अष्टविंशतिस्तरंगः ।

अथ जैनधर्मबोध प्रारम्भः ।

दोहा–तीर्थंकर जहँ देवकह, गुरुजातिहैं जैन ॥
जैनेश्वर मुख भाखजो, ग्रन्थ है केवल बैन ॥

उत्पत्ति कथावर्णन ।

भागकाट षट जैन मत, तामें द्वै विधि कीन ।
तीनकाल और सर्पिणी, उपसर्पिणी है तीन ॥

आदि काल तिहुँ प्रथमके, तामें उत्पति होय।
नामजुगलिया नारि नर, प्रकटहोय द्वै दोय ॥
जगत आनादि निधन कहै, तासु न कबहूं नाश।
बीजते रचना सकल हो, यह जगत स्वयम प्रकाश ॥
याको कर्तानाहिं कोइ, यह जग आपे आप।
कर्म प्रेरि कर वावसब, कर्महि रचना थाप ॥
ईश बसै बैकुंठमें, अलग कर्मते सोय ॥
निर्विकार निर्लेप सो, नाम निरञ्जन होय ॥

चौपाई।

सो प्रभु करे करावे नाहीं।जिवस्वच्छन्दनिजवशमेंआही ॥
जीव जन्तु जग नाना जाती। जेते जड़ चैतन ते पांती ॥
कर्म जनित फल भोगें सारे। आतम सबके न्यारे न्यारे ॥
जस कछु कर्म करै जो कोई। उग्र छुद्रता के वश होई ॥
बिश्वमाहि जड़ चेतन केते। जेते जीव आतमा तेते ॥
निर्बिकार जो ईश्वर होई। जग विकार ताते नहिं कोई ॥
सो नहिं कर्मके बंधन पड़ता। राग द्वेष ता हृदय न बर्ता ॥
नहिं उपजाव न पालै कोई। नहिं संहार सृष्टि कर सोई ॥
सकल विकारते सो प्रभु न्यारा। जीव कर्म निजु भोग निहारा ॥
यहि षट कालमें दुःख सुखठाठा। तीनमें वृद्धि तीनमें घाटा ॥
तीन काल सुख स्वर्ग समाना। उगै धरनि कल्पद्रुम नाना ॥
पाप रहित मानुष तब सारे। नर सुर दूनों संग विहारे ॥
द्वै द्वै प्रकट होय तब सोई। नाम जुगलिया तिनको होई ॥
आयू परम दीर्घ रह जाको। सब सुख छाय रहा महिताको॥
कर्म कृपा कछुसो नाहिं जाना। राव रंक सब एक समाना ॥
सदा काल यक सम उजियारा। कल्पद्रुमकी ज्योति अपारा ॥

दिन औ राति न कोई जानै । रवि शशि उडुगण सकल दुराने
चन्द सूर बिन नूर प्रचण्डा । पारिजात आभा नौ खंडा ॥
दरदर पर सुरतरु वर लागे । सकल नारिनर सुखमें पागे ॥

पूरवी बोल छन्द बरवै ।

दमक देव द्रुम बमकै महि शशि सूर ।
गमकि रहल चहुँ ओर वा चमकै नूर ॥
पूरन धरनि अकसवा जोति अपार ।
यक समान दिन रतिया नहिं अँधियार ॥
छपे सुरतरुकी जोतिया लगनमें मन्द ।
एक न दीख नखतिया नहिं रवि चन्द ॥
नर तिय सकल जुगलिया सब निस पाप ।
पुण्य पाप कछु नाहीं कर्म न थाप ॥
तब नहिं बोध बिचरवा नहिं गुरु शिष्य ।
कतहु न वरणाश्रम वासव सम दिव्य ॥
कतहू उग्र न सदवा रंक न राव ।
नर सुर विचर धरनिया कछु न बराव ॥
हिल मिल दोउ दल रहते जनु सँग भाय ।
भोग भूरि कल्पद्रुम काम पुराय ॥
महिं सुख छाय स्वरगवा छवि सरसाय ।
हीरा लाल कि खनियां कविको गाय ॥
नहिं कछु वेदन बानी नहिं श्रुति छंद ।
धर्म न कछु अधरमवा सहजानन्द ॥

इति ।

अथ चौथा कालवर्णन ।

सोरठा—लागत चौथा काल, सुरतरु जबही लोपहो ।
नर गह न्यारी चाल, कृत्त चली कृतकाल तिहि॥

चौपाई ।

चौथा काल लगै जब आई । तबसे रात्रि द्यौस विलगाई ॥
कल्पवृक्ष तब जाहि लुपाई । चन्द सूर तारे दरशाई ॥
जिहि औसर निशदिन विलगाना । भिन्नभाव तब जगकोजाना ॥
तब मानुष ऊपरको देखे । चकित होय सब कहैं विशेषे ॥
यह क्या हमरी नजरमें आयो । जो हम काहू देखि न पायो ॥
तब कुलकर ब्यौरा कहि देही । चन्द सूरय तारे हैं येही ॥
कुलकर सोई नाम धरावै । जो मानुष कुलको विलगावै ॥
जाति वर्ण कुल न्यारा करही । तिहि अनुसार धर्म आचरही ॥
राजनीति सब भाषै ओई । खेती कर्म सिखावै सोई ॥
जब मानुष सुरतरु नहिं राखै । कुलकर तबहि कृसानी भाषै ॥
तबते कृतक रहि सब लोगू । अन्न उपायके भोजन भोगू ॥
जबहि देव द्रुम गयो दुराई । ईख उगी मानुष सुखदाई ॥
भांति भांतिके ऊख अरु गन्ना । जिवको दुःख दरिद्र सबभन्ना ॥
कल्पवृक्षके बदले ईखा । प्रथमहि जाको मानुषचीखा ॥
ताकी खेती प्रथमहि चाली । कुलकरकी आज्ञा सबपाली ॥
कुलकर अनुभव ज्ञान गहाई । सब जीवनको राह बताई ॥
कुलकर आदि भूप इक्ष्वाका । प्रथम चली जग जाकीशाका ॥
इक्ष्वाकु कुलकर कहलाये । प्रथम जो नरको ईख चुसाये ॥
अर्थ सहित यह नाम कहाया । इक्ष्वाकु जिन ईख चुसाया ॥
तिहि अवसर गुणदोष विभागा । पुण्यपाप मानुषको लागा ॥
कर्म दोष गुण तबते पागे । प्रकट करे कुल करके आगे ॥
कछु औगुन जब नरमें पावै । तिहि कुलकर धिक वचन सुनावै ॥
सो धिक वचन सुने नर नारी । निजमनमें अति होहिदुखारी ॥
यतनेमें अस लज्जा माना । तजे तुरंत आपनो प्राना ॥

अस कहि नर छोडे निजचोला ।आज हमें कुलकर धिकबोला ॥
कछु दिन बीते मनुष ढिठाई । धिक बोलीसे सो मल जाई ॥
जब धिक वचनसे राह न धरही । बहुरिधिकाधिककुलकरकरही॥
यतनेहु पर जब शर्म न माने । अधिक दंड तब कुलकर ठाने ॥
क्रमही क्रम औगुन अधिकाई । बेडी बांसकै दे ठहराई ॥
शूली फांसी दण्ड प्रचंडा । लगा होन पृथ्वी नौ खंडा ॥

इति ।

अथ वर्णविभाग वर्णन—चौपाई ।

चौथा काल आनि जब लागा । तबते मानुष जाति विभागा ॥
तीन वर्ण प्रथमहि तब कीने । छत्री वैश्य शूद्र कहि दीने ॥
दोय प्रकार शूद्र पुनि कीना । एक लीन भौ दुतिय मलीना ॥
तबते जाति बरन ठहराई । कुलकर भिन्न २ बिलगाई ॥
दोय प्रकारके लोग कहाये । यक नर यक विद्याधर गाये ॥
मानुष भू गोचरी बखानो । विद्याधर खगोचरी मानो ॥
भूगोचरी भूमि पग डाले । उडि अकाश विद्याधर चाले ॥
जाति वर्ण दोनोंमें कीना । नर विद्याधर धर्म धुरीना ॥
नर विद्याधर जैनी सारे । तिरथंकर सेवा चित धारे ॥
पंचम काल लगै जब आई । तब मिथ्यात्र फैल अधिकाई ॥
जबतें मिथ्या मत सरसाने । तबते विद्याधर बिलगाने ॥
चौथे काल माह परिपाका । प्रकटे तिरसठ पुरुष शलाका ॥
एक सौ उनहत्तर जिव सारा । चौथे काल माह औतारा ॥
मुक्तिपात्र कहिये नर जोई । चौथे काल प्रकटे सब सोई ॥
प्रकट तबहि तिरथंकर देवा । सुर नर मुनि कर जाकी सेवा ॥
सुर सुरपति पृथ्वीपर आवै । तिरथंकरकी अस्तुति गावै ॥

ऋषभनाथ है आदि तिर्थंकर । तिनके पुत्र भे भरथ भूपवर ॥
चक्रवर्तिथे भरथ भूपाला । चौथा वर्ण कीन तिहि काला ॥
सब मानुषकी पारख लीने । दायावंत अधिक जिहि चीन्हे॥
ब्रह्म चीन्हि जिन दाया धारा । तिनको भिन्नकियो तिहिबारा॥
ब्रह्मन तिनको नाम पुकारी । जिनके हृदये दाया भारी ॥
चौथा वर्ण भरथनृप थापा । तबते चार बरणकी छापा ॥
ऋषभनाथकी केवल वानी । तिहिऔसर अस कहैं बखानी॥
भरथ विप्र थापे हे जाको । चलै जगतमें तिनकी साको ॥
पञ्चम काल जाहि दिन ऐहै । ब्रह्मन जैन विरोधी ह्वैहै ॥
जैन विरुद्ध कर्म सब करिहै । द्रोह सदा जैनीसे धरिहै ॥
कछुदिन यहिविधि गयौसिराई । मन मत ब्रह्म न वेद बनाई ॥
जैन विरुद्ध कर्म सब ठाना । हिंसा कर्म करहिं विधि नाना ॥
अश्वमेध गोमेध रचाही । अजामेध नरमेध बनाई ॥
ब्राह्मणजातिकी अधिक प्रशंसा । लिख्यो ताहि ब्रह्माको वंशा ॥
अपने मन सब शास्त्र बनाये । सबते आपको श्रेष्ठ बताये ॥
करि प्रपंच सब थाप अचारा । जैन विरुद्ध पाखंड पसारा ॥
चौथा काल बहुरि जब ऐहै । फेर न ब्राह्मण वर्ण थपैहै ॥
बहुरि प्रतिष्ठा देय न ओही । थपै न जैन धर्मको द्रोही ॥
जाति बर्णकी वात बखानी । अब पुरषनकी कहो कहानी ॥

छंद त्रिभंगी ।

चौबिस तीर्थंकर जैनी शंकर बस क्रम कंकर धूल कियौ ।
गुन ज्ञान गहंतं मुक्ति लहंतं अरि हंतं अति चूल कियौ ॥
दाया उपदेशं रहित कलेशं मोह न लेशं धर्मधनी ।
कुल पद बतीशं बानी दीशं जैन मुनीशं भर्म भनी ॥

अथ चौबीस तीर्थंकरके नाम वर्णन ।

दोहा—ऋषभ नाथ प्रथमै कहो, अजित नाथ कह फेर ।
शंभौ अभिनंदन कहो, सुमतिनाथजी टेर ॥
पदम प्रभू क्षुपारसो, चंद्र प्रभू बखान ।
पुष्पदंत शीतल श्रेयम, बासपुज्ञ पुनि जान ॥
विमल अनंतो धर्मनाथ, शांतिकुंथ नाथोय ।
अर्हनाथ अरु मल्लजी, मुनि सुवृत्त कह जोय ॥
निम नाथो नेम नाथ कह, पारस नाथ कहोय ।
महावीर नाथो कहो, अंत तिर्थंकर सोय ॥

इति ।

अथ बारह चक्रवर्तियोंके नाम ।

दोहा—भरथ सगर मघवा कहो, सनतकुमार गनाय ।
सांतिनग्धकुंथनाथजी, अर्हनाथ कहवाय ॥
पुनि सुभूमि पद्मो. विजय, हरिखेनो ब्रह्म दत्त ।
सारी पृथ्वी बशकरे. कर निज़ु चक्र गहत्त ॥

अथ नौ बलिभद्रके नाम ।

दोहा—विजय अचलजो धर्म धर, बहुरि सुप्रभुजी होइ ।
फेर सुदर्शन जानिये, अरु सुनंद कहै जोइ ॥
नंदमित्र पुनि लेखिये, रामचंद्र पुनि जान ।
पद्म फेर कहि मानिये, नौ बलिभद्र प्रमान ॥

अथ नौ नारायणके नाम ।

दोहा—प्रथम दुपिष्ट तृपिष्टजी, बहुरि स्वयंभू गाय ।
पुरुषोत्तम नरसिंहजी, पुंडरीक बतलाय ॥
केवल दत्त बखानिये, फेर लक्ष्मण मान ।
कृष्णचंद्र नौमें कहो, यदुकुल दीपक जान ॥

अथ नौ प्रतिनारायणके नाम ।

दोहा—अश्वग्रीव तारक मेरक, मधु निशुंभ प्रहलाद ।
बलि रावण ज़रासंध नव, प्रतिनारायण बाद ॥

इति ।

अथ तिरसठ शलाकापुरुषके नाम—चौपाई ।

तिरसठ पुरुष शलाका येही । जैन जान अति उत्तम तेही ॥
मात पिता तिरथंकर केरो । अरतालीस जीव सो हेरो ॥
चौबिस कामदेव नौ नारद । चौदह कुलकर बुद्धिविशारद ॥
ग्यारह रुद्र यक सौ उनहत्तर । मुक्तिपात्र अवश्य येते नर ॥
इनते इतर और अधिकाई । केवल ज्ञान गहि मुक्त कहाई ॥

अथ जैनशास्त्र संख्या प्रमाण—चौपाई ।

जैन शास्त्र संख्या परमाना । ऐसे ताको सुनो बखाना ॥
बत्तिस पद सब शास्त्र कहावै । ऐसे ताको लेख लगावै ॥
प्रतिपद ढ़ाई सौ मन स्याही । यक पद पूरन लिखिये ताही ॥
यक चावल कज्जल जौं लीजै । यक श्लोक पूरण तिहि कीजै ॥
बत्तिस पद यह लेख लगाई । सर्व शास्त्र ताते लिखि पाई ॥
कज्जल आठ सहस मन लागे । केवल बैन जैनपति जागे ॥
केवल बानी जैनको जोई । ग्रंथ प्रमाणिक इनमें सोई ॥

अथ अष्टकर्म विधान वर्णन ।

दोहा—अष्टकर्म जो जैन कह, ताके बंधन जीव ।
भव सागर भोगे सदा, पावै नहिं निजु पीव ॥
ज्ञानी बरनी प्रथम कह, दर्शना बरनीं फेर ।
बहुरि बेदनी जानिये, महा मोह पुनि टेर ॥

आयू कर्म बहुरि कहो; नाम कर्म पुनि भाष ।
गोत कर्म अंतराय कर्म, बरनौ तिनकी शाख॥
कर्म एकही जानिये, आठभांति सो दीस ।
प्रकृत जैन बानी कहै, एक सो अरतालीस ॥
इति ।

अथ ज्ञानावर्नी कर्मकी पंच प्रकृति वर्णन—चौपाई ।

मति ज्ञानावर्नी जो कर्मा । सो आवरि राख्यौ मतिधर्मा ॥
श्रुति ज्ञानी वरनी जब होई । शुभश्रुति ज्ञान फुरे नहिं कोई ॥
औध ज्ञान आवर्नी जबही । औध ज्ञान हिय होय न तबही॥
मन पर्जय अबरन ऊगि आवै । सो मन पर्जय ज्ञान छपावै ॥
प्रकटे केवल ज्ञाना बरनी । केवल ज्ञान गोप तिह करनी॥
मतिश्रुतिऔधअरुमनपरजाई । केवल ज्ञान पंच विधि गाई ॥
मति ज्ञान सो नाम बताई । मति बुधिते जेती चतुराई ॥
कारी गरी अरु गुन गन जेते । मति ज्ञान करि लहिये तेते ॥
द्वितिये श्रुति ज्ञानजिहि कहई । सर्व शास्त्र मुख पाठ जो रहई ॥
तीन काल देखे श्रुति द्वारा । जाने सकल अचार विचारा ॥
श्रुति केवल ज्ञानी कह सोई । पूरन जो श्रुति ज्ञान ते होई ॥
श्रुतिके बली जो पंडित पूरा । श्रुति द्वारे संशय कर दूरा ॥
तृतियेऔध ज्ञान जब होई । मनकी बात जाने सब सोई ॥
जाके मनमें जो कछु भासा । सो सब औधते होय प्रकाशा॥
चौथे कह मन परजय ज्ञाना । जो मनकी परजायकोजाना ॥
जह जह मन छन२ कर दौरा । जो कछु फुरै जाय जिहि ठौरा॥
मन परजय सो सबही जानो। सूक्ष्म गति मन कछु नदुरानो॥
पंचम केवल ज्ञान कहावे । ताकी उदय मुक्ति जिव पावै ॥
केवल ज्ञान जो हृदय प्रकाशा। सकल भर्म भयकेर बिनाशा॥

केवल ज्ञानी साधू जोई। गुप्त बस्तु तिनते नहिं कोई ॥
पंच पौरि जो ज्ञानको कहिया। ताको ऐसो लेखा लहिया ॥
मति ज्ञान जिहि पूरन होई। श्रुतिज्ञान अधिकारी सोई ॥
श्रुति ज्ञानते औध गहावै। औधते मन पर्जय उगिआवै ॥
मन परजयते केवल ज्ञाना। मतिश्रुतिऔधजोप्रथमबखाना॥
तीन पौरि लो भ्रम नहिं टूटै।चौथ पौरिते पंचम जूटै ॥
तीनज्ञान लो हो अरु जाई। मन पर्जय नहिं फिर बिन शाई ॥
मन परजय अरु केवल ज्ञाना। होके बहुरि न कबहु लुपाना॥
याहूमें विधि बहुत बखाना। पौरिहु को नहिं कछु बंधाना ॥
अकसमात कबहू अस होई। बिना औधके वल लह लोई ॥
बिन मन पर जय केवल ज्ञाना। निर्णय जैन धर्मपर माना ॥
ज्ञानावर्ण ते ज्ञान न होई। अवरन भंजि लाभ हो सोई ॥
ज्ञानाबरनी पंच बतावो। बहुरि दर्शना वरनी गावो ॥

इति।

अथदर्शना बरनी कर्मकी नौ प्रकृति वर्णन—चौपाई।

द्वितिय दर्शना बरनी पहारा। जाके ओट अलख कर तारा॥
चक्षु दरशना बरनी जो बंधा। जोजिव करै होयसो अंधा ॥
अक्षर दर्शना बरनी जाही। शब्द परसरस ब्यौरा नाहीं ॥
औध दरशना वरनी उदोता। विमल औध दर्शन नहिं होता॥
केवल दर्शना बरनी जाहा। केवल दर्शन होय न. ताहा ॥
ध्यान अरुझि निद्रामें परई। सो प्रानी विशेष बल करई ॥
उठि उठि चलै करे कछु बाता। करे प्रचंड कर्म उतपाता ॥
निद्रा निद्रा उदय पुकारी। सकैन सो जिव पलकउघारी॥
प्रचला प्रचला जबलो गहई। चंचल अंग लार मुख बहई॥
निद्रा उदय जीव दुःख भरता। उठै चलै बैठै गिर परता ॥

रहै आँखि प्रचलाते बांधी। आधी बंद खुली रह आधी॥
सोवत माह सुरति कछु रहई। बार बार लघु निद्रा गहई॥
इति।

अथ वेदिनी कर्म द्वैविधवर्णन--चौपाई।

कर्म वेदिनी द्वै विधि हूवा। साता एक असाता दूवा॥
साता कर्म उदय जब होई। जीव विषय सुखवेदक होई॥
कर्म असाता उदय जो होई। जिव बेदै दुःख खेदत होई॥
इति।

अथ मोहनी कर्म द्वैविधि वर्णन--चौपाई।

दो विधि मोहनी कर्म बखानी। यक दर्शन यक चारित हानी॥
दर्शन मोह दुविध उचारा। चारित मोह पचीस प्रकारा॥
प्रथम मोह मिथ्या ती होई। जिव जबऔर कि और गहोई॥
दूजे मोह मिश्रकी चाला। सत्त असत गहै समकाला॥
तृतिय मोह समकित कहि दीनी। जिनमलीनसमकितकहकीनी॥
दर्शन मोह त्रिबिध यह भाषा। सुन पचीस अबचारितशाखा॥
प्रथमै सोलह कहो कषाई। फिर नौबिधिको लेखलखाई॥
प्रथम कषाय क्रोध कहि दीजै। जाकी उदय छमा गुन छीजै॥
द्वितिय कषाय मान परचंडा। बिनय बिनाश करे सतखंडा॥
तृतिय कषाइ है माया रूपी। जाकी उदय सरलता गूपी॥
चौथे लोभ कषाय प्रकाशा। जासु उदय संतोष बिनाशा॥
येही चार कषाय कहीजै। अनुक्रम सूक्षम थूल गहीजै॥
सो चारो चौगुना करीजै। ताते सोलह भेद भनीजै॥
अनंता अनबाँधिया कषाई। तासु उदै नाहिं समकितथाई॥
जाको कहिये प्रत्याख्यानी। तहां सर्व संयमकी हानी॥
उदय अप्रत्या ख्यानी होई। सो पञ्चम गुन थान कखोई॥
जोत ज्वलन नाम कहलावै। यथा ख्यात चारित विनशावै॥

क्रोध मान माया अरु लोभा । चारो चार चार विधि शोभा॥
यह कषाय षोडश बिधि बाना । नौकषायअबनिज चितधरना॥
राग द्वेषकै हासी होई । हास्य कषाय कहावै सोई ॥
मगन होय जब जिव सुखमाही। रति कषाय रस बरनौ ताही ॥
कछु न सोहाय जीवको जहवां। अरति कषाय बोलिये तहवां॥
थर हर जहाँ जीव कंपाई । भय कषाय सो नाम धराई ॥
रुदन विलाप वियोग दुःखारी । जहां होय सो सोगविचारी ॥
जहां गलानि उपजै मनमाही । सो दुर्गंधा रोग कहाही ॥
त्रिविधि वेद स्थिति वर्णौं सोई । नर अरु नारि नपुंसक जोई ॥
प्रथमैं सोई करिये वर्णन । जीव पुरुष वेदीको लक्षन ॥
यथा अग्नि तृण मूला केरी । शिखा उतंग तासुकी हेरी ॥
अलपकाल अति आतप ताई । अल्पै काल माह विनसाई ॥
पुरुष वेद धारी जिव ऐसे । धर्म कर्ममें रहनित जैसे ॥
महा मगन तप संयम माहीं । तनतावै तनको दुख नाहीं ॥
चित औदार उद्धत धरनामा । पुरुष वेद धर आतमरामा ॥
बनिता वेदी बहुरि कहीजै । जिमि कोइलाकी अग्निगहीजै॥
जिमि कोइलाकीअग्नि हो तीखी। परकट धुवां न तामें दीखी ॥
सिलिगिसिलिगिउरअन्तरदाहा। रहै निरन्तर अति अवगाहा ॥
तिमि बनिता वेदी नर होई । मीठी बोल बोलता सोई ॥
बाहर ताकी मधुरी बानी । भीतर कपट छिद्रछल खानी॥
कपटलपट करिके अधिकारी । निजगलकुगतिकोबंधनडारी॥
पापकर्म औरनको सिखई । सबको अंध करे सो विखई ॥
आपा हनि औरनको हंता । निज कुमंत्र बहुतनते भणता ॥
बनिमा वेदी ऐसो गुनिये । तृतिय नपुंसक वेदी सुनिये ॥
नगनदाहसम प्रकट न दीसा । गुप्त पजावा अग्नि सरीसा ॥

जैसे हो करसीकी आगी । रहै सदा उर अंतर लागी ॥
महाकलुषता नित उर जेही । वेद नपुंसक धर नर येही ॥
नर अरु नारि नपुंसक माही । भविधि मदनमद जैन कहाही ॥
प्रथम तीन मिथ्यात बखाना । बहुरि पचीस कषाय विधाना ॥
दोनों मिलि अट्ठाइस होई । मोह प्रकृत जानिये सोई ॥

इति ।

अथ आयुकर्म चारप्रकार वर्णन—चौपाई ।

आयू कर्महै चार प्रकारा । नरपशु देव नारकी धारा ॥
उदय मनुष आयू नरभोगा । पशुआयूते पशु संयोगा ॥
सुरआयू सुरपदको जाता । नारक आयू नरक निपाता ॥

इति ।

अथ नामकर्मकी तिदानवे प्रकृतवर्णन—चौपाई ।

छठये नाम कर्म कहलावै । जीवको मूरतवंत बनावै ॥
नाम कर्म यह चतुर चितेरा । मूरतखंच रंच नहिं फेरा ॥
पिंडप्रकृत चौदह परतारा । अट्ठाईस अपिंड विस्तारा ॥
पिंडभेद पुनि चौसठ भाषा । अट्ठाईस अपिंड मिलिसाखा ॥
ते दूनो तिरानबे होई । पिंड अपिंड बयालिस जोई ॥
सो तिरानबे करो बखाना । श्रवण लायके सुनो सयाना ॥
प्रथमहि पिंडप्रकृत गतिनाना । सुरनर पशु नारकदुःखधाना ॥
देवदेह सुरगति उद्यौता । नरशरीर नरगतिसे होता ॥
पशुगतिसे जिव पशुतन पावै । नरक गतीले नरक बसावै ॥
चहुगति पूरबी चारो गनिये । द्वितिये पिंडप्रकृतअब सुनिये ॥
मरनसमय तनतज जिवजबही । परभव गौन तौनकर तबही ॥
पूर्वप्रकृत ल्यावै तिहि प्रेरी । भावी गतिमें ल्यावै घेरी ॥
करे पूरबी आनि सहाई । धरि नवीनतन जिव प्रकटाई ॥

तृतीये प्रकृत इंद्री अधिकारा । यक द्वै त्रै चौ पंच प्रकारा ॥
परस जीव नासा दृग काना । यथायोग जिव नाम बखाना ॥
सूक्ष्म इंद्री धरे जो कोई । मुखनासा दृग कान न होई ॥
सो एकेंद्री थावर काया । भू जल अग्नि बनपती बाया ॥
जाको तन रसनायुत बादी । जलचर शंख जौंक गेडुवादी ॥
ऐसे जंत अनंत जो दीसा । ते द्वै इंद्री कह जैनीशा ॥
जाके तन मुख नाक हजूरा । घुन पमील अरु कान खजूरा ॥
ये सब जिव त्रै इंद्री भाषो । आंखिकानयुत रसजिनचाखो ॥
जाके तन मुख नासा आंखी । बीछूशलभ टीडी अलिमाखी ॥
यहि प्रकारके जिव जो नाना । सो चौ इंद्री जैन बखाना ॥
त्वच रसना नासा दृग काना । ज्यौंके त्यौं पंचेंद्रीय जाना ॥
नर नारकी देव पशुचारी । ये पंचेंद्री करो बिचारी ॥
चौथी प्रकृत शरीर उचारी । औदारिक बसाकिय वपुधारी ॥
औदारिक जो उदरसे होई । नर पशु योनि जानिये सोई ॥
देव नारकी भय किय देही । गर्भवास करते नहिं येही ॥
सुर नारक वय किय वपु धरते । देव देह मुनि तपवल करते ॥
जस प्रकृत तैसो तन गहेऊ । चौथी पिंड प्रकृत यह कहेऊ ॥
तनबंधन संघातन दोई । प्रकृत पंचमी छट्ठी होई ॥
बंधन उदय काय बंधाना । संघातनते दृढ़ संधाना ॥
दोहुकी द्वै साखा द्वै खंधा । यथायोग काया सनबंधा ॥
अब सातमी प्रकृतको कहिये । सांगोपांग तीन मन लहिये ॥
कहों आठमी प्रकृत विचारा । षटविधि रूप शरीराकारा ॥
जो सर्वांग चारु परधाना । सो तनसम चतुरंश बखाना ॥
ऊपर थूल अधोगति ठामा । सोनिगोद पर मंडल नामा ॥
हेठ थूल ऊपर कृशहोई । शांतिक नाम धरावै सोई ॥

कूबर सहित वक्र बपु जाको । कुबजाकार नामहै ताको ॥
लघुस्वरूपलघुजाहि निहारो । तासु नाम बावन वपु धारो ॥
जो सरबंग असुंदर भुण्डा । ताको नाम कहावै हुण्डा ॥
अष्टम प्रकृत भेद षट भाषा । अबनौमें कहअस्थिकि साखा॥
प्रथम बखान अस्थि आरंभा । सो षट विधिसै तनको थंभा ॥
वज्र कीलकी लित संधाना । ऊपर वज्र पट्ट मंडाना ॥
अन्तर हाड वज्रमय राचा । सो कहवज्र ऋषभ नाराचा ॥
दुतियो हाडजह वज्र सो होई । वज्र मेखते अविचल सोई ॥
ऊपर बैठन रूप समाना । ताहि वज्र नाराच बखाना ॥
तृतिये हाड जहवज्र सो देखो । रहित वज्र पट ऊपर लेखो ॥
नहिं वज्रकी लीजो होई । नाम नराच कहावै सोई ॥
चौथे हाड जो वज्र सो नाहीं । अर्धबेध कीली न तेहि माहीं॥
ऊपर बैठन वज्र न जाही । अर्धन राव बोलिये ताही ॥
पंच महाडन वज्रसो जिनको । नहिं पटबंधन कीली तिनको ॥
कीलित तब दृढ़ बंधन धारे । नाम कीलका तासु उतारे ॥
छठी अस्ति अब वर्णन करही । जो यहि काल जीव सब धरई ॥
जहाँ हाडते हाड न बंधा । अमिल परस्पर संधिन संधा ॥
ऊपर नसा जाल अरु चामा । ताको कहिये छेवट नामा ॥
दशमी प्रकृत गमन आकाशा । शुभ अशुभ दो भेद प्रकाशा॥
शुभ उग जीवकर्म शुभ करई । अशुभके उगे कुमारग धरई ॥
जैसी प्रकृत उदय जिहि होई । तैसा कर्म करे जिव सोई ॥
कहाँ ग्यारही प्रकृत बिचारा । ताको भेद पंच परकारा ॥
श्वेत अरुन दुति पीत कहीजै । हरित श्याम पांचोगति लीजै॥
जिहि जो रंगप्रकृत उगि आवै । ताको तैसो बरण. बनावै ॥
प्रकृत बारहीको रसनामा । पंच मकार देखिये तामा ॥

कटुम मधुर अरु तिक्त बखाना। अमल कषाय पंच परमाना॥
रसके उदय रसीली काया । निजुनिजुप्रकृतिजीवसबपाया॥
जो प्रकृत जाको उगि आवै । तिमि सो देह रसीली पावै ॥
तेरही प्रकृत गंधमय जाना । दुविधि कुगंध सुगंध बखाना॥
जो जिव जैसी प्रकृत बंधा । ताके तनमें तैसो गंधा ॥
परसनाम चौदही बनीजे । आठ शाख तिहि माहँ गनीजै॥
चिकनी रुष कोमल कठिनाई । लघुभारी तप शीतलताई ॥
औ चिकनी प्रकृत सुभाया । तब जिव गहै चीकनी काया॥
रूषी प्रकृति उदयहो जिनकी । रूषी काया देखो तिनकी ॥
कठिनउदयतिन कठिनविहारो । मृदुल उदय मृदु अंग निहारो॥
तप्त उदय हो तप तन येही । शीतल उदय शीत सो देही ॥
भारी नाम जो प्रकृत उद्यौता । सो जिव भारी तनधरि होता॥
लघुप्रकृतिजिहिजिवकह परई । हरई काया सो तब धरई ॥
चौदह पिण्ड प्रकृति यह भाषा। कहो बहुरि तिहिपै सठ शाखा॥
अब अपिंडको वर्णन कीजै । अट्ठाइस शाखा गनि लीजै ॥
प्रकृतअगुर लघु जब उगिआवै। जीव अगुर लघु तन तब पावै ॥
जबअपु घावउदय निजअंगा । आपु दुःखी नर तासु प्रसंगा ॥
जब परघात प्रकृत परकाशा । तब जिवऔरकोप्राणविनाशा॥
जब उश्वासा प्रकृत निवासा । तब जिव लेत श्वास उश्वासा॥
आतप उदय यथा इन भानू। उदितउदय तब शशीसमजानू॥
तिस प्रकृत जब प्रकट निहारी । जंगम तनधारि जीवविहारी ॥
थावर प्रकृति प्रकाश जो होई । थिर तनधारि जिव चलैनकोई॥
सूक्ष्म प्रकृति जाहिको परई । औरके मारे सो नहिं मरई ॥
बादल उदय न तन पावै। सबके मारे सो मरि जावै ॥
प्रजापतिं प्रकृति प्रकटाई। पूरी परजापति जिव पाई ॥

उदय अपरजा पति जिहिपाही। पूरी देहु तासुकी नाहीं ॥
प्रकृतिं प्रत्येक उदय जब होई। काय बनस्पति हो जिव सोई ॥
जड़ त्वचकाठ फूल फल पाता। बीज मही तरास कह साता ॥
सातभेद तन जिव तहँ एकू। सो जिव कहये राम प्रत्येकू ॥
दो विधिप्रत्येक बनस्पतिजानो। परतिष्ठितअपरतिष्ठितमानो ॥
धार अनंत रास जो कायक। ताहि प्रतिष्ठितकहै सुभायक ॥
जामें नहिंनि गोदको धामा। अप्रतिष्ठित प्रत्येक सो नामा ॥
काय बनस्पति कह साधारण। सूक्ष्म बादर दुविधि बिचारण ॥
संग्रह एक एकही देहा। तिहि कारण निगोद कहयेहा ॥
पिंडनि गोद है रास अनंता। पूरित नभको पावै अंता ॥
सूक्ष्म बादर दोय प्रकारा। नित्य अनित्य नाम जो धारा ॥
गोलक रूपी पाँचो धामा। अँडर खँडर इत्यादिकनामा ॥
सो सब नरक पातको जानी। तिनको दुःख को सकैबखानी ॥
जीव निगोध एक तन माही। एते जिव कछु बर्णि न जाही ॥
धरे जन्म सब एकै बारी। मरण एकठे मास विचारी ॥
एक श्वास उच्छ्वासके माहीं। तिनकोजन्म मरन असआहीं ॥
जन्म अठारह बारहै जिनको। मरव अठारह बारहि तिनको ॥
एक श्वास उच्छ्वासहि काला। तिनके जन्म मरणकोख्याला ॥
एक निगोद शरीरके माहीं। एते अमित जीव तहँ आहीं ॥
तीन कालके सिद्ध जो नाना। तिनकै एक अंश परमाना ॥
जीवगोदकी कथा अनंतो। वर्णन इत न होय बुधवंतो ॥
साधारण प्रकृति जब लहई। ताते जिव निगोदतन गहई ॥
साधारण प्रकृति लो बरना। चौदह शाखा तामें धरना ॥
शेष और जो चौदह रहई। ऐसो ताको व्यौरा कहई ॥
थिरप्रकृत तनमें थिरताई। अथिर उदैते तन अथिराई ॥

शुभ प्रकृतिते सब शुभ रीती। अशुभ उदै ते अशुभ गहीती॥
जब सुभाग प्रकृत जिव धारा। सो प्रानी हो सबको प्यारा॥
जब दुरभाग प्रकृति उगि आवै। तिहिलखिसबको जीव गिनावै॥
जब स्वस्वर प्रकृत प्रकटानी। होय मधुर कोकिल सम बानी॥
जब दुःस्वर प्रकृति तनधारा। साकी धुनि स्वर मनहुँपुकारा॥
जब आदेय प्रकृति संजूता। ताको आदर मान बहूता॥
अनादेय परप्रकृत जब होई। आदर मान करे नहिं कोई॥
जब जस नाम प्रकृति नर पाहीं। ताको यश कीरतिजगमाहीं॥
अयश नाम परकृत्त फुरानी। अपयश अपकीरति जगठानी॥
जब निरमान चितेरा आवै। सुंदर अंग उपंग बनावै॥
तिरथंकर प्रकृतिके भेवा। सो जिव हो तिरथंकर देवा॥
नाम प्रकृति अव पूरण कीने। पिंड अपिंड दोउ कहि दीने॥
पिंड प्रकृत भाषे दशचारी। ताकी पैंसठ शाख उचारी॥
अठाइस अपिंड गति बरनो। ते सब मिलि तिरानमें धरनो॥
तन संबंधी दश पुनि औरा। यकसौ तीन गनो यक ठौरा॥

इति।

अथ गोत्रकर्मकी दो शाखवर्णन–चौपाई।

गोत्र कर्म प्रकृति है दोई। ऊंच नीच कुल ताते होई॥
ऊंच गोत्र उद्योत प्रमाना। पावै जिव ऊंचे कुल थाना॥
नीच गोत्रफल संगत पाई। नीच गोत्रगहि जिव प्रकटाई॥

इति गोत्र।

अथ अंतराय कर्मकी द्वौ शाखवर्णन–चौपाई।

अव सुन अंतराय निरबारा। अष्टम करम परम ठगहारा॥
अंतरायकी नौ द्वै धारा। निश्चय एकएक व्यौहारा॥
प्रथम कहो निश्चयकी बाता। जासु उदय आतम गुणघाता॥

परगुण त्याग होय नहिं जहँवा। दान कि अंतराय कह तहँवा॥
आतम तत्त्व लाभकी हानी। लाभ कि अंतराय सो जानी॥
जबलो आतम योग न होई। योगको अंतराय कह सोई॥
बार बार नहिं जगि उपयोगा। उपयोग अंतराय सो भोगा॥
अष्ट कर्मते नहिं बिलगावै। बीरज अंतराय उगि आवै॥
निश्चय कहीं पंच परकारा। अब सुन अंतराय व्योहारा॥
तुच्छ वस्तु कछु देय न सकई। दान कि अंतराय बल ठकई॥
उद्यम किये न संपति होई। लाभ कि अंतराय कह सोई॥
विषयभोग सामग्री जाही। जीवभोग करि सकै न ताही॥
रोग होय कै भोग न जुरई। भोग कि अंतराय बलफुरई॥
एक भोग सामग्री सारा। भोग ताहिको बारहि बारा॥
कीजै सो कहिये उपभोगा। ताहूको न जुरै संयोगा॥
यह उपभोग घात विख्याता। बीरज अंतराय सुन बाता॥
जीवकी शक्ति अंत बताई। सो जग दशामें रही दबाई॥
जगमें शक्ति कर्म आधीना। कबहूँ अबल कबहुं बलहीना॥
तन इंद्री बल फुरै न जहवां। बीरज अंतराय कह तहँवा॥
ताते जक्त दशा परमाना। जैन धर्मध्वज बैन बखाना॥
यह व्योहार प्रकृतिकह पंचो। तिहि बिचार भ्रम रहै न रंचो॥
प्रकृति बिचार वर्ण यह भयऊ। जैन जेष्ठ जस बानी कहेऊ॥

इति अष्टकर्म।

अथ अष्ट कर्मकी आयुस्थितिवर्णन—चौपाई।

ज्ञानी बर्नीकी स्थिति दीशा। कोडा कोडी सागर तीसा॥
यह उतकृष्ट दशा परमाना। एकमुहूर्त जघन्य बखाना॥
दुतिय दर्शना वरनी कर्मा। थित उतकृष्ट कहोसुन मर्मा॥
कोढा कोडी तीस समुद्रा। एक मुहूरतकी थित छुद्रा॥

तीजा कर्मवेदिनी जानी। कोडा कोडी तीस बखानी॥
यह उतकृष्ट महाथित सोई। जघन मुहूरत द्वादश होई॥
चौथे महामोहको मानी। थित उतकृष्ट जैनपति बानी॥
सागर सत्तर कोडा कोड़ी। लघु थित एक मुहूरत जोड़ी॥
पंचम आयू कर्मशरीसा। उतकृष्टी सागर तैंतीसा॥
थित जाघन्न मुहूरत एका। जैन ज्येष्ठ कह सहित बिवेका॥
छठये नामकर्म निरुबारी। कोड़ाकोड़ी बीस बिचारी॥
यह दीरघ आयू थितधारी। जघन मुहूरत कहिये चारी॥
गोत्र कर्म सातमा कहाये। उतकृष्टी थित बीश बताये॥
कोड़ाकोड़ी काल प्रमाना। लघु थित एक मुहूर्त बखाना॥
अष्टम अंतराय जो उजागर। कोडाकोडी तीसहै सागर॥
लघु थित एक मुहूरत धर्मा। आयू बिबिधि भांतिसे बर्नो॥
दीरघ मध्यम लघु कहि भाषा। काल प्रमानभांतिबहुराखा॥

इति।

अथ सागरप्रमाणवर्णन–चौपाई।

सागरको अब करो बखाना। जैनधर्मको सुनो प्रमाना॥
योजन दोय केर चौकोरा। सागर नाम ताहिको शोरा॥
दोय सहस्र कोश जिहि माहीं। योजन पक्का कहिये ताही॥
सोई योजन सुनो प्रमाना। ताका यह चौकोर बखाना॥
भेडरोमके तहाँ लेआई। एक रोम बहु खंड बनाई॥
रोमखंड़ अस करे जो कोई। खंड एक पुनि खंडन होई॥
रोमभाग सब यकठे करिये। सो सब तिहि सागरमें भरिये॥
रोमखंड जब पूरन कीजै। सागर ऐसो कठीन भरीजै॥
दाबि दाबिके ऐसे भरना। परमकठिन सो सागर करना॥
चक्रवर्त सेना समुदाई। तिहि सागरपरसे लंघि जाई॥

दबै न हेठ भारसो पाई। रोमखंड पूरण कठिनाई॥
ऊपर हेठ रोम तहँ भाली। रंचहु कतहू रहै न खाली॥
अस पूरण चौकोर जो होई। सागर नाम बखानो सोई॥
जितने खंड रोम गनि लीजे। तितने वर्ष प्रमान करीजे॥
ऐसे कठिन पूर्ण लखि जाको। सागर एक नामहै ताको॥
कोडकोडपर ताको गुनिये। कोडाकोडी सागर सुनिये॥
तीस क्रोड अरु तीसै क्रोडो। सोलह सुन्न ताहिमें जोडो॥
कोडा कोडी तीस कहीजै। यों सागरको लेखा लीजे॥
कोडाकोडी सागर बनते। मानुष आयू ताते गनते॥
एते कोडा कोडी जीये। तापीछे तनत्याग सो कीये॥
ऐसहि कूप समुद्र कहानी। जिमि सागरको लेखा जानी॥
विविधि भांतिसे कीना लेखो। जैन धर्म सो निर्णय देखो॥
लघु दीरघ आयू बहुतेरी। यथाकाल बल तैसो हेरी॥
जबलो आगे कर्म न टूटै। तबलो जीव योनिमें जूटै॥
अष्टकर्म रिपु जो संहारे। तासु नाम अरिहंत पुकारे॥
जब ये कर्म जीवते टलके। तिमि रवि हाय रूप तब झलके॥

इति।

अथ बारह भावनी अथवा आत्मगुणवर्णन।

दोहा—प्रथम अथिर अशरण जगत, एआन असुचान।
आश्रय संबर निरजुरा, लोकबोध दुलभान॥

चौपाई।

जक्तवस्तु कछु थिर नाहिं दरसै। देहरूप आदिक जो सरसै॥
थिर बिन प्रीति कौनते कीजै। अथिर जानि ममताताजिदीजै॥
अशरण तोहि शरण कोइ नाहीं। देखो तीन लोकके माहीं॥

तेरो कोइ न राखनहारा। कर्मके वश चेतन निरधारा ॥
यहि संसार भावनी येहा। परदर्बनसे कीजै नेहा ॥
तू चेतन ये जड सरबंगा। ताते तजो पराया संगा ॥
जीव अकेला आपतकाला। अर्ध मध्य भौन पाताला ॥
दूजा कोइ न तेरे साथा। सदा अकेला फिरै अनाथा ॥
भिन्य सदा पुदगलसे रहई। भर्मभाव करि जडता गहई ॥
ये पुदगल रूपीके खंधा। चिदानंद तू सदा अबंधा ॥
अशुचि देखि देहादिक अंगा। कौन कुवस्तुलगि तेहिसंगा ॥
हाड मास रुधिरो गदगेहा। निरखि मूत्र मल तजो सनेहा ॥
असें परसे कीजै प्रीती। तातै बंध बढ़ै विपरीती ॥
पुदगल तोहि अपन कोइ नाहीं। तू चेतन ये जड सब आहीं ॥
संबरपर रोकनको भाऊ। सुख होनेकी यही उपाऊ ॥
चिदानंद हो निर्मल आपू। मिटै सहज परसंग मिलापू ॥
गहि लीजिये आपनो कर्मा। जाते प्रकट होय निज धर्मा ॥
थित पूरीहो खिरखिर जाई। निरज्वर भाव बढै अधिकाई ॥
लोकमाह तेरो कछु नाहीं। लोक आन तू आन लखाहीं ॥
है यह षटदर्वनको धामा। चिदानंद तू आतम रामा ॥
धर्म सुभाव आपनो जानो। आप सुभाव धर्मसो मानो ॥
जब तोहि धर्म प्रकट ह्वै आवै। तब परमात्म पदै लखिपावै ॥
दुर्लभ परदर्बनको भाऊ। आपा नहिं दुर्लभ सुन राऊ ॥
जौं तेरो है ज्ञान अनूपा। तौं नहिं दुर्लभ शुद्ध स्वरूपा ॥

इति।

अथ जैनयतिके अट्ठाईस मूलगुण वर्णन।

सोरठा-पंच महाव्रत संच, सुमति पंच परकार है।
इन्द्रियाणि दम पंच, षट् अचार पृथ्वी शयन ॥

तज मज्जन निरधार, बसन त्याग कचलुंचकर।
लघुभोजन थित धार, दातन लेपन त्यागकर॥

चौपाई।

सब जीवनपर दाया पाला। सत्य वचन बोले तेहि काला॥
परसे नाहिं धन करे ससोई। मदन विकार न व्यापै कोई॥
सकल परिग्रहको जिन डाले। अधो दृष्टि मारगमें चाले॥
सुखीभूमि निरखि पद धरही। दयासहित शिवपन्थविचरही॥
निराभिमान अनवद्य अदीना। कोमल मधुर दोषदुःख हीना॥
ऐसे सुवचन सदा उचारा। सो जैनेश मुक्तिपद धारा॥
उत्तम कुल स्रावक आचारा। तासु भौन सूक्ष्म आहारा॥
दोष बयालिसको सो टाली। भिक्षा भोजनकी यह चाली॥
धर्मवस्तु कछु संग्रह धारा। सूखीभूमि निरखि मलडारा॥
सीत उल दोउ यक सम वादा। गंध कुगंधो स्वाद कुस्वादा॥
शब्द कुशब्द कुरंग सुरंगा। स्तुति निंदा दोउ यकढंगा॥
शत्रु मित्र दोउ यकसम भाला। सामा यक साधै तिहुं काला॥
अरि हंतो सिद्धौ आचारी। उपाध्याय साधूगुण धारी॥
पंच परम परमेष्ठी बाना। सदाकाल तिनको गुणगाना॥
दोषविचारके प्राश्चित करही। कृपा कर्ममें निजुचित धरही॥
जैनेश्वर बानी अनुसारा। द्वादशांग आदर उर धारा॥
काऊ सम मुद्रा नित धारे। हृदये शुद्ध स्वरूप विचारे॥
सूखी भूमि शयन हितकारा। त्यागे त्रिविधि योग ममकारा॥
पाश्चिम राति नींद लघु गहई। धर्मध्यानमह पावन रहई॥
अंतर बाहर परम पुनीता। लेपनहान त्याग सबकीता॥
नग्न दिगंबर मुद्रा धारी। विगलित लज्जालोक विहारी॥
एकबार लघुभोजन लेही। कंचलुचै तजि दातन देही॥

इति।

अथ जैन यतिकी बाइस परीसा वर्णन ।

सोरठा–भूख प्यास हिम गर्म, हंस मशक डंस नग्नतन ।
अरतिकेर दुःख परम, चर्जा आसन शयनकह ॥
खल वध बंधन बांद, जाचै नहीं अलाभको ।
रोग परस न विषाद, मलमय आदरमान बिन ॥
प्रज्ञाअरु अज्ञान, दरस मलीन दो बीसये ।
जैन परीसा जान, सहै जाहि रिषि राय नित ॥

चौपाई ।

एकपक्ष जब दिन वित गैऊ । उन ओदर भोजन तब लैऊ ॥
विधिवत जौं भिक्षा नहिं पाई । अंगशिथिल मनमें दृढ़ताई ॥
पर अधीन भिक्षा ऋषि राया । प्रकृति विरुद्ध जो भोजनपाया
ग्रीषमकाल विहाली ठानी । सहै प्यास मांगैं नहिं पानी ॥
हिम ऋतुमें कम्पै संसारी । बाहर तबहि खड़े व्रतधारी ॥
बर्षा वायु शीतको जोरा । सहै सकल नहिं तनमनमोरा ॥
भूख प्यास उर अंतर दागै । कोपे पित्त देहज्वर जागै ॥
ग्रीषम धूप अग्नि सो लागै । सहत सनी सनधीरज त्यागै ॥
दंश मशामाखी डंसै सर्पा । भाल शृगाल केहरी दर्पा ॥
कनख जूर आदिक दुःख देही । पीड़ासह दृढ़ता गह येही ॥
विषय विकार जासु उर भरही । भेष दिगम्बर सो किमधरई ॥
महाकठिन यह नग्न परीसा । सहै शील धर जैन मुनीशा ॥
देशकाल कारणको पाई । जक्त जीव मन व्याकुलताई ॥
ऐसी अरतिं परीसा भारी । सहै जैन मुनिधर्म संभारी ॥
तियदृग तीर शरीर न लागा । जगमें को अस, जन्म सुभागा ॥
को अस जेहिरतिनाथ न चंपा । मन सुमेरु मुनिको नहिकंपा ॥
चार हाथ देखत महिं चारे । कठिन कंकरी पाय विदारे ॥

चर्या दुःखसहि मुनि व्रतधरहीं। प्रथम स्वादकी सुरति नकरहीं॥
सूखी ठौर शयनको हेरे। निश्चल अंग रहै ऋषि केरे॥
कठिन पृथ्वीमें शयन कराई। शयन परीसा पर जय पाई॥
खल निरदोष साधु को मारे। दुःख अनंत दे अग्निमें जारे॥
समरथ होय सहै दुःखसारा। रंच क्रोध नहिं निज उरधारा॥
हासी करहि दुष्ट मिलि झारी। कहि कटुबचन देहि बहु गारी॥
वचन बाण मारे जब तानी। क्षमा ढालओटे मुनि ज्ञानी॥
छीन भये तन पिंजर रहेऊ। दुःख अनंत जब देही सहेऊ॥
काहू की नहिं चहै सहाई। प्राणहु गये अयाच रहाई॥
एकबार भोजन की बेरा। मौन साधि नगरी करि फेरा॥
बहुदिन बीते न भिक्षा पाई। तिहि अलाभ मनखेदनल्याई॥
भोग संयोग रोग जब होई। कछु उपचार न चाहै सोई॥
सहै दुःख नित रहै अदीना। देह विरक्त आत्म लौलीना॥
कंकरी कंटा पाय विदारे। रज तृण आंखिनमें भरि मारे॥
सहै दुःख निजु कर नहिं काढे। तृणपारस बिजई मुनि गाढे॥
तजि असनान होय दुःख भारी। चलै प्रसेव धूल भरिडारी॥
मलिन आपनी देह निहारी। मलिनभाव नहिं जैनाचारी॥
चिर तपसीबुद्धि विद्यासागर। गुणगणअतुलितजक्त उजागर॥
नर आदर प्रणामनहिंकरहीं। तहँ मुनिमलिनभावनहिंधरहीं॥
ऐसे बुद्धि विद्या निध गहिरे। परवादी नहिं सम्मुख ठहरे॥
आगम अगम अलंकृत जाना। पै मुनीश मद रंच न आना॥
पाल धर्म बहुतदिन गेऊ। ज्ञानप्रकाश अजौं नहिं भेऊ॥
कछु विकल्प नहिं मनमें अहई। सो अज्ञान विजईमुनि अहई॥
मैं चिर घोर घोर तप ठानी। तब बलसिद्ध झूठ कछु मानी॥
यौं कदापि मनमें नहिं बाधू। सोई अदरसन विजई साधू॥

इति बाईस परीसा।

अथ बाइसबस्तु अभक्ष्यवर्णन—चौपाई ।

बैगन बहुबीजा अरु ओला । बट्ट पीपर पाकर कहि बोला ॥
ऊमर कठऊमर निस भोजन ।कदमअयाचतुच्छ फल कोगन॥
विष माटी मद मधु अरु मासा । खार चलो रसघोरव डासा ॥
माखन और अचार कहावै । बाइस बस्तु अभक्ष्य बतावै ॥
इनते अधिक मूलहै जेते । भक्षण योग्य न कोई तेते ॥
जिनमें धाम निगोद कहीजै । जीव अनंत न पार लहीजै ॥

इति ।

अथ जैनसाधु और गृहीको वर्णन—चौपाई ।

दोय प्रकारके साधु बखाना । दीगंबर श्वेतांबर बाना ॥
दीगंबर मुद्रा कठिनाई । सो नरते अब गहीन जाई ॥
ताते लोप दिगंबर भेऊ । श्वेतांबरी अजो रहि गेऊ ॥
अजहूँ गृही दिगम्बर मतको । जाने अपने धर्म कि गतको ॥
गृही को गृही करे उपदेसा । जैसो गुरू शिष्य पुनि तैसा ॥
श्वेतांबरी साधु बहु तेरे । नाम ढूंढि या तिनको ठेरे ॥
जैन धर्मकी बारह पौरी । बिबिधि रीति देखो सब ठौरी॥
सबपर श्रेष्ठ दिगम्बर बाना । छुल्लक ताके हेठ बखाना ॥
पुनि दश पौरि सरावक आहीं । सेवा पूजा देखो ताहीं ॥
तिरसठ पुरुष शलाका जोई । पूजा तासु जैन घर होई ॥
तिरथंकरकी मूर्ति बनाई । मंदिर माह ताहि पधराई ॥
दीगम्बर कर फेची टूटी । श्वेतांबर फेची मुखपट्टी ॥

इति ।

अथ स्वर्ग और मुक्तिशिलावर्णन—चौपाई ।

साठि पटल स्वर्गन में सुनिये । सर्वारज सिध सबपर गुनिये ॥
तापर मुक्ति शिला कहलावै । मुक्त होय सो ताहि समावै ॥

इतर धर्म जो जग विख्याता । कोइ मिथ्या कोइ मिश्रमिथ्याता॥
साठि पटल जो स्वर्गन माहीं । बारहलो मिथ्याती जाहीं ॥
जैनी बिना न ऊपर जावै । बारहलो सबही गम पावै ॥
जैनधर्म बिन मुक्ति न होई । केवल ज्ञान उगे नहिं कोई ॥
स्वर्गनके सुख अमित बताई । रहे देवगण सबमहँ छाई ॥
स्वर्गकि थित जब पूरन होई । तब जिव धरणिधरे तन सोई ॥
जैसो भाव स्वर्गमें धरई । तैसी योनिमाह जिव परई ॥
जो सर्वारज सिद्धको जावै । एकदेह धरि मुक्ति सो पावै ॥
जबलों कर स्वर्गनमें वासा । तबलों देह धरनकी आसा ॥
चौथे काल मुक्ति जिव होई । पंचयें छठयें लहे न कोई ॥
सुकरम किये स्वर्गको जावै । पँचयें छठयें मुक्ति न पावै ॥
ढाईसहस वर्ष बित गयऊ । पंचम काल लगत जो भयऊ ॥
उगै न तबसे केवल ज्ञाना । बिना ज्ञानको मुक्ति लहाना ॥
स्त्री कोई मुक्ति न पाई । करि सुकर्म स्वर्गनमें जाई ॥
स्वर्गभोगि नरतन पुनि पावै । केवल ज्ञान गहि मुक्ति कहावै॥

इति ।

अथ नर्कको वर्णन—चौपाई ।

सप्त नरक मत जैन कहाहीं । यम यमगण कतहूँकोइ नाहीं॥
औध ज्ञान जस देव गहाही । ज्ञान कऔध नारकिन मांही ॥
बुरा औध नारकहि फुराना । पूरब वैरभाव सब जाना ॥
पिछला सब औगुण सुधिआवै । एक एकको मारि दुःखावै ॥
शस्त्रादिक तहँ अगणित जाती । दंड कि हेत बना बहुभांती ॥
काटे छेदे तन तिन केरे । कोइ कोइ कोल्हूमें धरि पेरे ॥
एक एकको धरि धरि मारा । मचा चहूँदिश हाहाकारा ॥
जस पारा तस नारक अंगा । कटि फटि होय सो पहिले ढंगा॥

सातो नरक केर व्यौहारा । भिन्न भेद पीडा अधिकारा ॥
महादुःख नारकहि बनाई । आयू परम दीर्घ जिन पाई ॥
दोहा—सुई अग्र भरि मृत्तिका, नरकसे महि जौं आय ।
ताकी अति दुर्गंधते, सब तरु पशु मरिजाय ॥ इति ।

अथ प्रलय वर्णन—चौपाई ।

प्रलयके प्रथम इंद्र महि आवै । जोड़े जोड़े जिव लेजावै ॥
स्वर्गमें सबकी जतन कराई । जबलो प्रलय पूर्ण ना पाई ॥
निज विमानमें सब जिव धारी । स्वर्ग दिशा जब इंद्र सिधारी ॥
ताके पीछे प्रलय आवै । जीव जंतु सबही बिनसावै ॥
अग्निवर्षि पुनि जल सरसाई । जीवबीज नहिं कतहूँ पाई ॥
पूरण प्रलय होय हरिजाई । जीव इंद्र गहि महि पुनि आई ॥
ताते पुनि जग उतपाति होई । एकते बहुरि अनेकन सोई ॥
कबहु न होय बीजको नाशा । जक्त अनादि स्वतहँ परकाशा ॥
क्रमहीक्रम फिर बढ़ै विभूती । सर्व पदारथ पृथ्वि प्रसूती ॥

इति प्रलय ।

स्फुटवार्ता—चौपाई ।

षट्प्रकारकी अस्थि जो कहेऊ । वज्रशरीर प्रथम जिव गहेऊ ॥
वज्रको हाड शीघ्र किमि गलई । कहु २ पृथ्वीमें अजौं न टलई ॥
यूरुप नर जहँ तहँ चलि जावै । वज्र हाड जिव जंतुको पावै ॥
सो निज मन ऐसे अनुमानो । हाड परा चिरने पथरानो ॥
ताको मर्म न जाने सोई । वज्रहाड जिव प्रथम गहोई ॥
भीम शरीर समस्त वज्र रह । दुर्योधन तन अर्ध वज्र कह ॥
लेखा ताहि काल अस रहेऊ । कोइ वज्र कोइ घाटि तिहि कहेऊ ॥
ताके प्रथम कठिन सर्वंगा । हनूमान आदिक वजरंगा ॥
चिरंजीव जीवे चिरकाला । गहितन वज्र दोय दुख टाला ॥

इति श्रीजैनधर्म ।

सत्य

अथ स्वसमवेदबोधप्रारंभः ।

भारतपथिक कबीरपंथी-
स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने
बम्बई
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें
छापकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९६३, शाके १८२८.

Printed at the "Shri Venkateshwar" Steam Press, Bombay.

श्री कबीर साहिब ।

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतान, धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दया नाम, की दया वंश-व्यालीसकी दया।

अथ श्री बोधसागरे

एकोनत्रिंशतिस्तरंगः ।

अथ स्वसमवेदबोध प्रारम्भः ।

मंगलाचरण—चौपाई ।

बंदों गुरपद नख मणिज्योती । हृदये बसत दिव्यदृग होती ॥
कोटि सूर शशिउर उजियारा । तिमिर अविद्या सकलसंहारा ॥
चरनकमल मुनि दल अलिफंदा । धुरपद पाय मधुर मकरंदा ॥

पद पराग अनुराग दृढाई। करवहुअम्मर मणिछविछाई॥
चरन सलिलसरि मज्जनपाना। युगयुगकी कलिकलुषनसाना॥
महा प्रसाद प्रसादी पाई। कोटिन युगकी छुधा बुझाई॥
धर्मदास पद प्रथम नमामी। तापीछे करुनामय स्वामी॥
वंश बयालिस जगमें जिनको। कोटि प्रनाम हमारा तिनको॥
चार गुरू निज सतगुरु दासा। जिन्हे न प्रभु तजिदूसरआसा॥
मन क्रम बच गुरु चरन चेरो। तिनप्रति बहुअभिवंदन मेरो॥
सतगुरु अंशनको बहु बारी। बंदि चरनरज निजसिरधारी॥
जिन जिनसन्त मोहिउपदेशा। धर्मधामको कह्यो सन्देशा॥
प्रणवों कोटि बार कर जोरी। जिनकीकृपाविमल मतिमोरी॥
जे गुरु पद पंकज प्रिय पागे। बंदो सबहि सहित अनुरागे॥
पुनिबंदो सन्तनके चरना। गुरस्वप कछु भेद ना बरना॥
साहिब सन्त एकजिन जाना। तिनको आवागवन नसाना॥
नमो बहुरि कवि कुल समुदाई। सत्य कबीर चिन्हिजिन पाई॥
भे अरु अहै भव्य बहुतेरो। तिन प्रति बिनय दीनता मेरो॥
उमंगि उमंगि जोगुरुगुन गावै। कोटिन जीव लोक पहुं चावै॥
जडचेतन जहूं लगिजगजाया। रचना विविधि विरंचबनाया॥
साधु असाधु सूर अरु क्रूरा। भांज न बिबिध एकरसपूरा॥
सत्य सुकृत सबमाह विहारो। जोर जुगलकरसकल जोहारो॥
सब मिलि कृपा कीजिये सोई। भणित मोर मंगलमय होई॥
कबि न होउ नहिं चतुर सयाना। काव्य भेद रस भेद न जाना॥
कथ्यौ कथा सतगुरकी आसा। बुधजन लखिनकरैपरिहासा॥
बार बार गुरु पद शिर नाई। धर्म कबीर मर्म अब गाई॥

इति मंगलाचरन।

अथ स्वसमवेद धर्मवर्णन ।

दोहा—देव कबीर महँत गुरु, स्वसम वेद मत भाष ।
सार शब्द टकसार जहं, सत्यनामकी साष ॥
सार शब्द यक मूल है, टीका चौदह क्रोड़ ।
कोटिन ग्रंथको गनि सके, लहै न ताको और ॥
जे ती जगमें बनपती, अस गंगाको रैन ।
अगम अपार अकथ कथा, सत्य कबीरकोबैन ॥

इति ।

अथ उत्पत्तिकथा—चौपाई ।

उतपाति प्रलयकि कथाअनंता । बहु विधि सत्य कबीर भनंता ॥
उतपति पर्लय कोटिन बारा । स्वसमवेद निर्णय निरधारा ॥
कछुक लिखो सो ग्रंथ न हेरी । कथा अनूप यथा मति मेरी ॥
प्रथमै आदिमें ऐसो कहेऊ । स्वतह स्वछंद जीवयक रहेऊ ॥
रहे स्वतंत्र आनंद अकेला । नहिं तब गुरू नहीं तब चेला ॥
पक्की तत्त्वको ताको अंगा । अंड पिंड दोनों यक ढँगा ॥
माया पुरुषसो जीव उपाना । सत्यस्वरूपी ताको बाना ॥
अपनो रूप अनूप निहारी । अहमित भयौजीवतिहिवारी ॥
मोहित भा लखि रूप निकाई । ताहि मोहमें गा गाफिलाई ॥
आपा भूलि रहा नहिं चेता । महामगन मन भो ता हेता ॥
परमानंदमें गयो भुलाई । निजस्वरूपकी सुधि बिसराई ॥
तत्त्व प्रकृत्त पलटि गई तबही । पक्कीसे कच्ची भई जबहीं ॥
क्रमही क्रम भै छीन शरीरा । धरि धरि देह पाव बहुपीरा ॥
जब कच्चा भा पक्का सांचा । अंड पिंड दोनों भा कांचा ॥
निज स्वरूपको ज्ञान न राखा । भई योनि चौरासी लाखा ॥
आपै आप रमै जग सारा । भरमै यूनि अनंत अपारा ॥

बुद्धिभ्रांतिभै जिवकी जबते । काल दयाल प्रकट भै तबते ॥
आप काल है काल उपाया । आपै फसा आप दुःखपाया ॥

वार्ता ।

प्रथम जीव पक्के रूपमें हता तब दूसरा ना हता ॥ पक्के तत्त्वके नाम सत्य १ विचार २ शील ३ दया ४ धीरज ५ इन पाँच पक्के तत्त्वका रूप हंसाका था ताके तीनि गुण पक्के गुण हते अथ सत्य और बिचारको गुण विवेक १ अथ शील और दयाका गुण गुरु भक्ती साधु भाव २ अथ धीरजको गुण बैराग ३ ये पक्के तीन गुण हते तामें हंसा रहा ।

पचीस प्रकृतिको वर्णन ।

१ सत्यकी प्रकृति निर्णय १ निर्वंध २ प्रकार ३ थीर ४ छमा ५ इति ।

२ विचारकी प्रकृति अस्ति १ नास्ति पदसे भान २ यथार्थ ३ शुद्धभाव ४ सत्यता ५ इति ।

३ शीलकी प्रकृति छुधा निवारन १ प्रियवचन २ शांति बुद्धि ३ प्रत्यक्ष पारख ४ सब सुख प्रकट ५ इति ।

दयाकी प्रकृति अद्रोह १ मित्रजीव २ सम ३ अभय ४ समदृष्टि ५ इति ।

५ धीरजकी प्रकृति मिथ्या त्याग १ सत्यग्रहण २ निर संदेह ३ हंतानासने ४ अचल ५ इति ।

ये पाँच तत्त्वकी पचीस प्रकृति हैं तामें हंसाको बासा हता तब कच्चा तत्त्व ना हता । पक्के तत्त्वका पक्का देह हता ॥ तब कछु अनुमान ना हता । जब ऐसी अपनी देह देखा और सुंदरता माना तब बहुत आनंद हुआ । ता आनंदमें हंसा मिला तब आप अपनेको भूल गया गफलत पैदा भई । ता गफलतमें

एक झाँई परी। ता झाँईको सब कोई ब्रह्म सच्चिदानंद कहते हैं ता आनंदमें जीव बूड़ा तब तत्त्व प्रकृति पलटी। पक्केसे कच्चा रूप हुआ। आपाकी खबर न रही। तब पाँच पक्के तत्त्वसे पाँच कच्चे तत्त्व भये। धीरजसे आकाश १ दयासे वायु २ शीलसे तेज ३ विचारसे जल ४ सत्यसे धरती ५ पक्केसे ये पांच कच्चे तत्त्व भये। ताके तीनगुण कच्चे भये॥ धरती और जलसे सतोगुण भया १ अग्नि और वायुसे रजोगुण भया २ आकाशसे तमो गुण भया ३ पाँच कच्चे तत्त्वकी पचीस प्रकृति भई ये विकारकी देह भई॥ ताको नाम स्थूल मनमानता ते मानुष कहिये। तब हंकार हुआ कि मैं करता तासे इच्छा भई ता इच्छाको नारी रूपभया तासों भोगकिया फिर वह रूप विनासि गया नारी गर्भसे तीन रूप पैदाभये १ जीव ताते मन २ मनसे ज्योति ३ ज्योतिसे त्रिगुण रजो गुण ब्रह्मा १ सतो गुण विष्णु २ तमो गुण शिव ३ ये त्रिगुण ऐसे भये। जब पक्केसे कच्चा भया तब सम्पूर्ण सृष्टि चारखानि चौरासी लक्षयोनि पैदा भई आपही अनेक रूप धरि अनेक योनिमें भर्मता है गफलतसे अपनी भूमिका छोड़ा जब बहुत दुःख पाया तब अपने मनसे कल्पना किया कि हमारा कर्ता कोई दूसरा है फिर अनुमानते करता निश्चय किया ता करताके प्रेममें बहुत वेद शास्त्र आदिक बानी बनाया फिर आपही उसको खोजने लगा तब कहा की मालिक निर्गुण निराकार है तब सब वृत्ति थकित भई तब आपही ब्रह्म कहाय अनुभव करिके संपूर्ण जक्त आपही हो रहा है इस प्रकारसे ब्रह्मसे सृष्टि और सृष्टिसे ब्रह्म रहटमें परा जीवको कहीं निश्चय नहीं दोनों

प्रकारसे कष्ट पावता है जो साधुनकी सेवा करे और बड़े भाग उदय हों तो पारखी गुरु मिलै और पूर्ण पारख बतायके जीवको भर्म छोड़ावै तब आवागमनसे रहित हो पक्का रूप पायके कच्चेका अभाव करे तब आप पारख रूप हो । पारखी आप पारख रूप-ना कहूं धोखा ना भ्रमकूप ।

दोहा—एक जीव जो स्वतह पद, बुद्धि भ्रांतिसे काल ।
काल होय बहु काल, रचनाते भयो बिहाल ॥
बे हालीको मतो जो, देव सकल बतलाय ।
ताते परख प्रमान लहि, जीव नष्ट नाहिं जाय ॥
करि अनुमान जो सुन्नभो, सूझै कतहूं नाहिं ।
आप आप विसरो जबै, विज्ञान देहि कह ताहि ॥
ज्ञान भयौ जाग्यो जबै, करि आपन अनुमान ।
प्रति बिंब झाई लखे, साक्षी रूप बखान ॥
साक्षी है परकाश भो, महाकार न तिहि नाम ।
बिंब मसूर प्रमान भो, नील वरन घनश्याम ॥
बाढ़ि बिंब अर्ध पर्व भो, सुन्नाकार स्वरूप ।
ताको कारन कहत है, महा अँधियारी कूप ॥
कारणते आकारभो, श्वेत अंगुष्ठ प्रमान ।
वेद शास्त्र सब कहत तिहि, सूक्ष्मरूप बखान ॥
सूक्ष्म रूपसे कर्म भो, कर्महिसे अस्थूल ।
परा जीव याहि रहटमें, सहै घनेरी शूल ॥
स्थूलते पुनि सूक्षम, सूक्षमते कारण होय ।
महाकारन तूरिया प्रकाशी, ज्ञान देहि कह सोय ॥
सर्वसाक्षि सो ज्ञान है, रहित भयो विज्ञान ।
संतो सबै अनर्थ पद, यामें नहिं कल्यान ॥

षट देही वर्णन करो, समझिके त्यागो मित्त ।
एक एक अब कहतहौं, जिहिप्रकार जिहि मित्त ॥

इति ।

अथ स्थूल देही वर्णन वार्ता ।

स्थूल देही साढ़े तीन हाथ रक्तबरन ब्रह्मा देवता रजो गुण ॐकार मात्राका जाग्रत अवस्था वैखरी बाचा त्रकुटी अस्थान जल तत्त्व खेचरी मुद्रा पपील मार्ग घटा काश नेत्रस्थान सत्यलोक विश्व अभिमानी गायत्री प्रथम पद क्षर निर्णय बड़वाअग्नी विषयानन्दारिक आपतत्त्व दश इन्द्री रहस मात्र का अर्थ सत्र ऋग्वेद चौदह देवता पचीस प्रकृति इति ।

पचीसप्रकृति वर्णन ।

१ अकाशकी प्रकृति काम १ क्रोध २ लोभ३ मोह४ भय५ रंग काला अहार शब्द द्वारा कान इति २ वायुकीप्रकृति चल, ना १ बोलना२ बलकरना ३ पसारना ४ संकोचना ५ रंगहरा अहार गंध द्वारा नासिका इति ।

३ अग्निकी प्रकृति नींद १जमुहाई २भूख ३प्यास ४आलस ५रंगलाल अहार देखनो द्वारा आंख ४ जलकी प्रकृति रक्त १ पसीना २ थूक ३ मूत ४ बिंद ५ रंग श्वेत अहार मैथुन द्वारा लिंग इति ५ पृथ्वी प्रकृति हाड१ मास २ नाडी३ चाम४रोम ५ रंगपीला द्वारागुदा इति पचीसप्रकृति ।

चौदह देवताके नाम।

मनके देवता चन्द्रमा १ बुद्धिको देवता ब्रह्मा २ चित्त को देवता नारायण ३ अहंकारको देवता शंकर ४ नेत्र को देवता सूर्य्य ५ कानको देवता दिशा ६ वाचाको देवताअग्नि७ त्वचा,

को देवता वायु ८ नाकको देवता अश्विनी कुमार ९ जीभको देवता बरुण १०हाथको देवता इन्द्र ११पाँवको देवताउपेन्द्र१२ लिंगको देवता प्रजापति १३ गुदाको देवता यम १४ मुक्तिसालोक इति स्थूलदेही विस्तार।

अथ सूक्ष्म देहीको वर्णन वार्ता।

लिंगदेही अंगुष्ठ बराबर ओंकार मात्रका श्वेत वर्ण विष्णु देवता स्वप्न अवस्था श्रीहटस्थान मध्यमा बाचा उर्ध सन्य दीर्घमात्रका यजुर्वेद वैकुण्ठलोक कण्ठस्थान पालनाक्रिया आप तत्त्व भूचरी मुद्रा विहंगमार्ग द्वुतियापद गायत्री अक्षर निर्णय मन्दाकिनी कोहं अहंकार सामीप्य मुक्ती पंचभूत सूक्ष्म प्राण अपान समान उदान व्यान चतुष्टय अन्तःकरण मनबुद्धि चित्त अहंकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये सूक्ष्म नौ तत्त्व कहिये पंच ज्ञान इन्द्री पंच कर्म इंद्री ये सब जडहैं जीव प्रतापते चैतन्य होतेहैं तासे जीव कहते हैं इति लिंग।

अथ कारण देहीको वर्णन वार्ता।

कारण देही अर्ध पर्व्व श्याम बरण मकार मात्राका गोलहट स्थान बैसन्ती बाचा मध्य शून्य तमो गुण सामवेद चाचरी मुद्रा कपिमार्ग महदाकाश हृदयस्थान पराग्य अभिमान कंठ स्थान निर्णय उदायाग्नि तृतीया पद गायत्री अद्वैतानन्द नबीन इच्छा शक्ती सुषुप्तिअवस्था सारूपमुक्ति इति कारण देही।

अथ महाकारण देहीको वर्णन।

महा कारण देही मसूर बराबर विकार मात्रका नील वरण ईश्वर देवता हुंठ पीठ स्थान पराबाचा शून्य अर्धमात्रका अथर्वण वेद वायुतत्त्व अगोचरी मुद्रा। ज्वाला कालामीनमार्ग चिदाकाश आत्मलोक नाभी स्थान प्रतिज्ञा विष्णु अभिमानी

चतुर्थ पद गायत्री आदि शक्ति विदेहीनंद सोहं ओहं अहंकार तुरीया अवस्था प्रकाशिक सायुज्य मुक्ती इति।

अथ ज्ञानदेहीको वर्णन वार्ता।

इन चारोंको साक्षी ज्ञान देही स्वसमवेद उन मुनि बाचा स्थान भौंर गुफा सदाशिव पूर्ण गिरी अनुचरीय मात्रका पूर्ण बोध अवस्था कालातीत शिष्यमार्ग निराकाश शिष्यस्थान निराश्रयलोक निरंजन अभिमानी पंचम पर मारथ पद गायत्री ज्ञाननिर्णय ब्रह्मज्ञान मन ब्रह्मानंद अहंकार ज्ञानेदही ज्योतिस्वरूप कहते हैं मुक्तिमें ब्रह्ममय सर्वसाक्षी इति ज्ञानदेही।

अथ विज्ञानदेहीको वर्णन वार्ता।

विज्ञानदेही आकाशवत् रूप रेख रहित नहीं आवै नहीं जाय नहीं उपजै नहीं विनशै नहीं भीतर नहीं बाहर ऐसा है कैसा नहीं। अहंकार रहित मान अपमान रहित रूप अरूप रहित अहम् (मैं) त्वम् (तू) रहित बचन और निर बाच रहित इच्छा अनइच्छा रहित नाहं कर्ता नाहं भुक्ता जैसाको तैसा विज्ञान देही ना कोई जीव ना कोई मन ना कोई माया ऐसा भास विज्ञान देहीमें रहताहै इति विज्ञान देही।

चौपाई।

इसके आगे भेद हमारा। जानैगा कोइ जानन हारा॥
कहैं कबीर जानैगा सोई। जापर दया गुरूकी होई॥

सोरठा—यहि विधिसे यह जीव, गिरा आपने रूपसे।
भोगे दुःख सदीव, जबलो लहे न भूमिका॥

चौपाई।

यहि विधिजिव निजरूप विसारे। तजि सो भूमि देह गह न्यारे॥
तजि निज रूप और जब भासा। कछुक द्यौस तामें कर बासा॥

सो तन त्यागि और पुनि लैऊ। पुनि कछु काल ताहिमें रहेऊ॥
पुनि त्याग्यौंपुनि गह्यौ नवीना। क्रम क्रमभयौ ज्ञान गुनछीना
षट प्रकार गह उत्तम अंगा। पुनि पशु पक्षी कीट पतंगा॥
नर तनमें ज्यौं पारख पावै। तौ यह जीव बहुरि घर आवै॥
मनु देह ज्यौं चेतन होई। तौ निश्चय जिव जाय बिगोई॥
धोखे परा जीव यहि लेखा। भांति भांतिको धारे भेषा॥
भ्रमकरि वेद कतेब बनाया। भ्रमकरि द्वैताद्वैत बताया॥
भ्रम करि कर्म धर्म ठहराया। भ्रम करि बड़ बानी कथिगाया
भर्मको धर्म सकल जग माहीं। सब जिव बले भर्मकी छाहीं॥
भ्रम करिके षट दर्शन थापा। भ्रमकरिके जिव लखै न आपा॥
भ्रम करि ईश्वर दूर बताया। बिरही बने सकल जग जाया॥
भ्रम करि इत उत ढूँढ़न लागे। भ्रम करि प्रेम भक्तिमें पागे॥
धोखे परा सकल संसारा। बिन सतगुर भ्रम टरे न टारा॥
सारशब्द सतगुरुको पावै। सब धोखा भ्रम दूरि बहावै॥

दोहा—ब्रह्मादिक सनकादिक, भ्रमकरि बानी गाय।
ता बानी भ्रम विषचढ़ा, जीव गये गफिलाय॥
तिहि कारन आसा लगी, आवा गौनको मूल।
पह्यो ताते सात फुटि, जीव सहै बहु शूल॥

इति।

अथ सात बीज वर्णन।

ॐ श्रीं रं सौं रौं ह्रीं क्लीं अ इ उ ए व म ह।

चौपाई।

सात बीज यह कह्यौ बखानी। ताते पुनि अंकुर उतपानी॥
क्रम उपाह्या योग अरु ज्ञाना। उतपाति स्थितिप्रलय विधिनाना
सातो अंकूरे जब चाली। चित्तरूप तब गहौ कुदाली॥

गोडन लगे नित्त प्रति वाही। बुद्धिके जलते सीचा ताही ॥
आलबाल हंकार बनाया। मन रूपी तहँ खाद डराया ॥
अंतःकरण भूमिका माही। नित नौ पल्लव फूटै ताही ॥
नाना क्रम उपाख्या नाना। नाना योग अरु नाना ज्ञाना ॥
नाना उतपति स्थितहैं नाना। प्रलय अनंत न जाय बखाना ॥
एक एक प्रति नाना बानी। नाममात्र कहि तासु बखानी ॥
सात बीज गुरुवन मिलि बोये। प्रथम सुभेच्छा नाम कहाये ॥
पुनि सुविचार दूसरे कहिये। तनोमानसा तृत्तिये गहिये ॥
सत्त्वापति चौथे कहि दीजै। असंशक्ति पंचम गनि लीजै ॥
छठे पदार्थ अभावनी भाषा। तुरिया नाम सप्तमे राखा ॥
बोये सात बीज जब येही। अंकूरे निकसे फुटि तेही ॥
प्रथमै सो अब करो बखाना। जाते ज्ञानकेर बंधाना ॥
सोहं बीजको अंकुर ज्ञाना। आलबाल भक्तीमय साना ॥
सींचा ताहि प्रेमकी बारी। ताने नित नौ पल्लव धारी ॥

दोहा—शुभ इच्छादिक सातये, तिनप्रति बानी भूर।
पल्लव तिनते बहु फुटी, रही जक्तभर पूर ॥
ज्ञानपरोक्षहै फूल तिहि, फल अपरोक्ष जो ज्ञान।
दो बिधि ज्ञान परमानमें, जक्त जीव अरुज्ञान ॥

चौपाई।

दुतिये अकार कर्म कहि गावो। ताते क्रम अंकूर उगावो ॥
भय करि आलबाल कर ताही। लोभके जलते सींचा बाही ॥
तामें सात साष कर थापन। य जन याजन अध्यन अध्यापन ॥
दान प्रतिग्रह मैथुन गानी। सातो क्रमकी नाना बानी ॥
बानीते पल्लव बहुतेरो। फूल वासना ताको हेरो ॥
पुण्य पाप द्वै फूल सो आना। कर्म करै यह कीन बखाना ॥

पुनि तृतिये अब देहु बताई । श्री उपाल्ला बीज कहाई ॥
तिहि उपाल्ला अंकुर आया । आलबाल मरजाद बनाया ॥
भावके जलते सींचा ताहीं । सात साष फूटी तिहि माहीं ॥
शिव विष्णू गणपति रवि होई । शक्ती राम कृष्ण सातोई ॥
पल्लव ताहि न फूटी थोरी । महामंत्र जो सात करोरी ॥

दोहा—जारन मारन बसकरन, उच्चाटन उच्चार ।
आकर्षण अस्थंभनो, मोहन सप्त विचार ॥
तिनमें लागे फल रुचिर, लोकादिक बहु फूल ।
अब चौथे वर्णन करो, योग धर्मको मूल ॥

चौपाई ।

योग बीज रंकी न प्रमाना । ताते योग अंकुर बिकसाना ॥
किरिया आलबाल कर ताको । साधन जलते सींचा वाको ॥
शास्त्र पतञ्जल पल्लव गायौ । सात साष तामें फटि आयौ ॥
प्रथमैं सो हठयोग बतावो । बहुरि योग लय नाम कहावो ॥
योग कुंडली तीजे बरना । पुनि लंबिका योग चितधरना ॥
पंचम तारक योग बताई । षष्ठम योग अमनसक गाई ॥
योग सांख्य सप्तम गुणगाहा । फूल समाध बखानो ताहा ॥
अणिमादिक सिद्धी फल अहई । अब उतपत्य भेद विधि कहई ॥
एउतपत्य बीज बतलाया । तामें उतपति अंकुर आया ॥
विषया आलबाल कर जाही । बानी जलते सींचा वाही ॥
उतपाति साष सात प्रकटानी । जाते चारो खानि बखानी ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गंधा । बहुरि बासना इच्छा बंधा ॥
शब्दते मेघ कीट बहु आही । दादुर आदिक उत्पाति जाही ॥
बहुरि स्पर्श अरु मैथुन गाया । जीव मैथुनी ताते जाया ॥
तृतिये रूप कि उत्पाति ठाना । अनल विहंग आदि जिवनाना

जेते दृष्टि भावते जाये । सो सब रूप उतपन्न कहाये ॥
चौथे रसते जलचर भयऊ । वृक्षके फलते कीड़े कहेऊ ॥
पंचम गंधते उखमज होई । छठे वासना उतपति जोई ॥
ताते देव योनि प्रकटानी । भूतादिक ताहींते मानी ॥
सप्तम इच्छाते सिद्ध योनी । सात बीज यह उतपति थूनी ॥

दोहा—नारी ताको फूल है, पूरुष फल बतलाय ।
बहुरि स्थितके बीजको, वर्णन करो सभाय ॥

चौपाई ।

ह्रीं स्थिती बीज षष्ठोई । आलबाल तिहि माया होई ॥
मोहके जलते सींचा येही । सात शाष फुटि निकसी तेही ॥
अन्न अरु जल तृण पृथ्वी पत्ता । फल अरु फूल स्थिती गहत्ता ॥
अन्नते नर जलते है जलचर । तृणते तृणचर पात पत्रचर ॥
पुष्पते स्थित पुष्पचर आही । फलचर सदा फलनको खाही ॥
महि अरु मैलसे जो उपजाया । महि अरु मैलसो भोग लगाया
अब सप्तम परलयको वरनो । क्लीं है बीज ताहि संहरनो ॥
परलयको अंकुर सों धारा । सात साखतामें परचारा ॥
आलबालकी ना. कठिनाई । क्रोध बारिते सो तृप्ताई ॥
सात साष है ताके तीरा । पृथ्वी पानी अग्नि समीरा ॥
लात हाथ अरु दंत भनन्ता । नास करनको शस्त्र अनन्ता ॥
भयहै फूल मृत्यु फल जाका । सत्त्य कबीर बचन परपाका ॥

इति ।

अथ उत्पत्ति कथाग्रंथ अमर मूल सत्त्य कबीर वचन—चौपाई ।

आदि पुरुष जब हतो अकेला । शब्द स्वरूपी पंथ दुहेला ॥
मनसा घटते भिन्न निकारी । उत्पति भई ताहि यकनारी ॥
वह नारी सकलो जग जाया । भग भोगे सो पुरुष कहाया ॥

भग द्वारे ह्वै बालक आया। यही भांति सब जग भरमाया
यहि घटमें द्वै रूप सँवारी। सूरय पुरुष चंद है नारी॥
प्रथम हतो जब सुन्न सुभाऊ। काल सुन्न एकै समुझाऊ॥
काल भेद कोई नहिं जाना। धर्मदास तुम सुनियौ ज्ञाना॥
सुन्नहि माह शब्द उच्चारा। धर्मरायको भयौ पसारा॥
प्रथमहि जिंद रूप यक भैऊ। सत्तर युग सोवत चलि गैऊ॥
सत्य साहिब मोहिआज्ञा दीन्हा। जिंद जीव कह तुम नहिं चीन्हा
तब हम जाय शब्द अस बोला। सोवत जिंद नाहिं चितडोला॥
तब हम जाय जगावन लागे। जिंद न जाग प्रेम अनुरागे॥
नाहिंन जाग नींद भ्रम आवा। तब हम शब्द एक उपजावा॥
काल शब्द कहि टेरि पुकारा। सुनिके जिन्द भयौ सँचारा॥
काल शब्द सुनि जिंद डेराना। तब गहि आनि चरण लपटाना
काल शब्द ना होता भाई। तौ काहेका भक्ति कराई॥
काल की डर तपसी तपसाधा। इंद्री पंच काल डर बाँधा॥

इति।

अथ उतपत्ति कथा ग्रंथ कबीरबानी और अनुरागसागरके अनुसार सत्यकबीर वचन--चौपाई।

प्रथमै आदि समर्थते सोई। दूसर अंश हतो नहिं कोई॥
आदि अंकुरा सुरति जो कीना। सत्य करी गर्भै तब लीना॥
पांच अंड तब भयौ उपानी। तत्त्व एकहै भिन्न प्रमानी॥
धावै अंड करै चौचन्दा। आप देखके सहजानन्दा॥
फूटे अंड तेज भइ धारा। सबमें देख पांच ततसारा॥
देखि रूप अंडनको भाई। सोहं सुरति तबै उपजाई॥
पुरुष शक्तिमे दोय प्रकारा। ताको सौंपा उतपाति सारा॥
तासो उत्पाति भेद बतावो। बचन सुरति एकै संमावो॥

जाते ओहं पुरुष मे अंशा । ओहं सोहं मे द्वै अंशा ॥
ताको आज्ञा उत्पति कीना । शब्द सांधि उनहूको दीना ॥
मूल सुरति अरु पुरुष पुराना । रचना बाहर कीनो थाना ॥
ओहं सोहं अंडन रहेऊ । सकल सृष्टि के करता भैऊ ॥
प्रथम अंकुर दूजे इच्छा संगा । तीसर मूल चौथ सोहंगा ॥
ओहं सोहं कीन प्रमानी । आठ अंश तिनते उतपानी ॥
आठ अंशमे एक निधाना । करता सृष्टि भये परमाना ॥
सात अंशके नाम बखानो । जिनते सकल सृष्टि बंधानो ॥
प्रथमहि मूल अंकुर गनीजे । इच्छा सहज सोहंग भनीजै ॥
पुनि अचिंत फिर अक्षर भैऊ । बृद्धहेत करता निरमैऊ ॥
सातो अंश जीव हितकारी । जिव कल्यान काजतनधारी ॥
यहिविधि रचना करि करतारा। पुनि अपने मनमाहविचारा ॥
बिना काल नहिं जीव डेराई । कोइ नभक्ति भजन मन लाई ॥
तिहि औसर प्रभु काल उपाया। जाकी डर सब जीव डेराया ॥
जप तपादि संयम जो करनी । काल कि डरतें सो सबबरनी॥
सात अंश जिव दाया करता । अष्टम काल भयौ संहरता ॥

सोरठा—बृद्ध हेत भे सात, अष्टम नास्तिकि हेतहै ।
स्वसमवेद विख्यात, तिनते सब रचना भई॥

चौपाई ।

द्वीपन द्वीप अंश बैठारा । सातो जहँ तहँ कीन पसारा ॥
अक्षरकीन जहाँ निज थाना । तहँ समूहजल तत्त्व बखाना ॥
अक्षर सुरति पुरुषकी बानी । त्रिगुण तत्त्व घटमाह समानी ॥
तब अक्षर को निद्रा आई । सोरह चौकरी सोय सिराई ॥
अक्षर सुरति मोहमें आई । ताते दूसर अंश उपाई ॥
अंडस्वरूपी जलमह दीना । यहअबिगति समरथनेकीना ॥

अक्षर जागा निद्रा जांई । देखि अंड व्याकुलता आई ॥
चक्रतभा यह किन निरमाई । अंडदृष्टिने देखो भाई ॥
चहुँदिश तहाँ रहे जल छाये । अंडा तापर तरे सुभाये ॥
अक्षर ढिग अंडा लगि आवा । तामें लिखी हकीकत पावा ॥
ऐसी तामें लिखी निशानी । परमपुरुषकी सो सहिदानी ॥
तुम लगि हम यक अंश पठाई । रचना करो सृष्टिकी भाई ॥
तुमते सो करिहै बरिआई । आवन देहु जहाँ लगि आई ॥
सत्रहसौ युग ऊपर तीसा । तासु महातम कर जगदीशा ॥
बहुरि महातम होय तुमारा । कालजालते जीव उबारा ॥
काल पुरुष तब पुरुष समाई । तासु महातम तब उठि जाई ॥
तब सब जीव मुक्ति पद पैहैं । फेरि न चौरासीमें ऐहैं ॥
ऐसो अंडपै लिखा निहारी । अक्षर पढि मनमाह विचारी ॥
अक्षर दृष्टि अंड बिहराना । ताते काल बली प्रकटाना ॥
सोई ज्योति निरंजन भयऊ । जाको सब जग करता कहेऊ ॥
अक्षर सुरति पुरुषकी बानी । ताते काल भयौ अभिमानी ॥
निरंजननाम अक्षरने भाषा । समरथ शब्द हृदयमें राखा ॥
प्रभु निज तेजते काल उपाया । ताते सकल सृष्टि दुःखपाया ॥
यकपग काल रह्यो पुनि ठाढो । युगसत्तर कीनो तप गाढो ॥
तपमें येत काल बिताई । मांगु २ वर कह तब साँई ॥
कहै कैल प्रभु यह वर दीजे । तिहूँ लोकको राज करीजे ॥
भवसागरमें राज हमारा । सुनि समर्थ अस बचनउचारा ॥
पुत्र जाहु पृथ्वीके मूला । जहाँ कूर्म बैठे अस्थूला ॥
सृष्टि भंडार कूर्मको भाई । सोलह माथ चौंसठहाथ पाई ॥
ताते लेहु सृष्टिकी रचना । शीस नाय बोलेहु मृदुबचना ॥
तीनलोकको पायो राजू । धर्मराय तब निज उर गाजू ॥

चाले धर्म हर्षहिय बाढ़े । मनमें करत गुनावन गाढ़े ॥
जाय कूर्मके सम्मुख भैऊ । नहीं प्रनाम दंडवत कियऊ ॥
देखे धर्म कूर्मकी काया । अठानबे कोटि योजन बतलाया
बारह पालंग कूर्म शरीरा । षटपालंग धर्म बलवीरा ॥
धर्मराय तब कूर्मते कहई । मोहि पुरुषकी आज्ञा अहई ॥
सृष्टिकी रचना मोकह देहो । नादेहो तो मारिके लेहो ॥
तबहि कूर्म निज मनहि बिचारी । यहतो काल भयौ हंकारी ॥
कहैं कुर्म सुनिये धर्मराया । पुरुष मोहि नहिं कछु फरमाया ॥
हमते मांगे कछु नहिं पावो । जाय पुरुष ढिग बेगि सिधावो
यह सुनि धर्मराय अतिकोपा । कूर्मते युद्ध करन प्रण रोपा ॥
तपबल काल भयौ बरियारा । अहंकार करि कूर्म प्रचारा ॥
भिरा जायके सम्मुख धाई । करे यतन किमि रचना पाई ॥
धाय काल अति बल तिहिडाटा । तासु तीन शिर नखते काटा ॥
शीस तासु जिहि औसर खंडा । उद्रते निकसा पौन प्रचंडा ॥
रणश्रम कुर्म तन उठा पसीना । सो जलतत्त्व पृथ्वीतिहिकीना
पाँचतत्त्व धरती असमाना । सूरय चंद्र नखत प्रकटाना ॥
तनते पौन छुटा जिहि बारा । रचना सकल कीन विस्तारा ॥
जबहिं प्रसेव बुंद जल दीना । महि उनचास कोटितिहिकीना
दूधपै जैसे परे मलाई । जलपर तथा जमीन जमाई ॥
कूर्मकोतिहु सिर भक्षन कियऊ । बहुरि निरंजन शून्यमें गेऊ ॥
धर्मराय तब कीन विचारा । कहँ लगि तीनो लोक पसारा ॥
स्वर्गमृत्यु कीनो पाताला । बिना बीज किमिकीजै बाला ॥
करि सेवा मांगो वर सोई । जाते तिहु पुर मेरो होई ॥
पूर्वध्यान तब कीन निरंजन । युगचौंसठ करसेवासंजम ॥
एकपाव पुनि सेवा कियऊ । चौंसठ युगलो ठाढे रहेऊ ॥

बहुरि पुरुष दीनो बरदाना । सोइ होई जो तोहि मनमाना ॥
बहुरि निरंजन विनय उचारा । बीज खेत दीजै करतारा ॥
देहु ठौर बैठा जह जाई । तबहि पुरुष अस बचन सुनाई ॥
मान सरोवर बैठक लीजै । तीन लोककी रचना कीजै ॥
तब करता मन कीन बिचारा । बीज खेत तिहि काल संवारा ॥

अथ बीजखेत अथवा आदि शक्तिकी
उत्पत्ति वर्णन--चौपाई ।

अद्याकी उतपत्ति बखानों । ग्रंथ श्वास गुँजार प्रमानो ॥
निज तन मथिं प्रभु मैल निकारी। रची ताहिते आदि कुमारी ॥
पुरुष मैलते साँचा कीना । पैठी मैल रंग तिहि दीना ॥
देकर रंग बरन सब फेरा । भीतर मैल मोह मद घेरा ॥
पुरुष मैलते पुत्री कीनी । पाँच तत्त्व तिहि भीतर दीनी ॥
उतपति पारस पुत्री पावा । प्रकटी कला अनंत सुभावा ॥
नख शिष देह सिद्ध प्रभु कीना । पंचइ श्वास तिहि भीतर दीना
जब श्वासा कायामें गैऊ । प्रकटी ज्योति जगामग भैऊ ॥
आठो अंग बना बहु रंगा । पारससार ताहिके संगा ॥
निरमल उदित बतीसो दंता । चमकै बिजुली कला अनंता ॥
उपजी ज्योति अखंडित बानी । बोले वचन पुहुप रससानी ॥
मधुर वचन अरु लीला धारी । देख रूप जब पुरुष दुलारी ॥
उपजी रंग रूपकी खानी । बोले अमी बिरहकी बानी ॥
उपजी कन्या कला अनूपा । पुरुषते पर्कट पुरुष स्वरूपा ॥
जिह्विया रस सब उतपति कीना । सोंपा रस कन्याको दीना ॥
उपजी कन्या अगम सुभावा । अष्टंगी कह पुरुष बुलावा ॥
पुत्री जाहु निरञ्जन पाही । तुम कह समरथ सदा सहाई ॥

अथ आद्या और निरञ्जनकी कथा वर्णन--चौपाई।

परम पुरुषकी आज्ञा पाई। कन्या तबहि कैल ढिग आई॥
यकपग खड़ी सेवमें लागो। छुटी समाधि निरञ्जनजागो॥
सम्मुख पलक उघारि निहारी। देखा ठाढ़ी आदि कुमारी॥
परमरूप शोभा सरसाई। देखतके लहि काम सताई॥
कहैं कैल सुनि आदि भवानी। मिलि हम तुम जगरचनाटानी
तब आद्या अस उत्तर दीना। यह विचार तुम अनुचितकीना।
मैं हौ बहिन तू मेरो भाई। मोहि तोहि ना होय सगाई॥
यहि करनी तोहि लागै पापा। धर्मराय तब निज पद थापा॥
पुण्य पापकी भय मोहि नाहीं। पुण्य पाप हमही तै आही॥
पुण्य पापके हंम करतारा। कोई लेय न लेख हमारा॥
कहैं कैल सुन आदि कुमारी। मोहि कारन तोहि पुरुषसँवारी
मानि लेहु तुम हमरो बचना। मिलिहमतुम करिये जगरचना
कैलवचन आद्या नहिं माना। उत्तर प्रति उत्तर तेहि ठाना॥
तबमन रोष निरञ्जन कीना। निज मुखमाहि मेलि तिहिदीना
लीलत कन्या कीन पुकारा। पुरुष २ कहि वचन उचारा॥
ततक्षन योग जीत प्रकटाने। गहे कमान बान कर ताने॥
सुरति बानते कैलहि पारा। कन्यां मुखते बाहर डारा॥
जब कन्या मुख बाहर आई। योगजीत तब गयो लोपाई॥
कन्या भय बश भै तिहि काला। पुरुषकि सुधि विसरायौ बाला
पिता पिता कहि कैलहि बोले। मदन प्रचंड तासु तनडोले॥
कियो निरञ्जन सकल पसारा। पुण्य पाप दोउ रचे अपारा॥
पुण्य पाप दोउ फंदा होई। जामें अरुझि रहे सब कोई॥
योग यज्ञ संयम व्रत पूजा। सब हमही कोइ और न दूजा॥
रची छुधा माया बिकरारा। पुरुष लोकको मूँद्यौ द्वारा॥

कहै निरञ्जन कामिनि पाही । पूरुष ढिंग अब हम नाहिं जाई॥
पूरुष लोक इहाँ रचि लीजे । यकछत राजहमहि तुम कीजे॥
अब तौ पुरुष आस नाहिं मोही । गाहिके बाह राखि हो तोही ॥
छंद–भग ना हतो तिहि नारिकै नख फारि कीन निरञ्जना ।
यमसाट जिव जेहि वाट विचरे घाट उत्पातिको बना ॥
भग भोग प्रथम संयोग सोई कैल आद्या सो ठना ॥
भे प्रकट ब्रह्मा विष्णु शंकर त्रिगुन भव निधि रंजना ॥

अथ त्रिदेवकी जन्मकथा वर्णन–चौपाई ।

काल कछुक जब गयौ सिराई । रूपरंग कन्या तन छाई ॥
जब भलि भांति रंग तन भीना । कन्या कैल व्याह सँग कीना॥
कूर्मको तीन शीस जो रहेऊ । कैल काटिके भक्षन कियऊ ॥
ताते तीन अंश प्रकटाने । ब्रह्मा विष्णु महेश बखाने ॥
देव निरंजन आदि कुमारी । केते काल कीनो सुख भारी ॥
कैल अरु कामिनि भोग बिलासा। स्वसमवेद भलि भांतिप्रकाशा
तीनो सुत जिहिं काल उपाई । धर्मराय तब गयौ लुपाई ॥
राजपाट आद्याको दीना । सुन्नमाह निज बासा कीना ॥
कह्यो निरंजन आद्या पासा । मेरो भेद न करहु प्रकाशा ॥
पुत्रनसे जनि बात जनावो । मेरो भेद न तिनहि सुनावो ॥
यतन अनेक ध्यानजौं लैहै । तो मम दर्श पुत्र नाहिं पैहै ॥
यह कहि शून्यमें गयो समाई । योगसमाधि निरञ्जन लाई ॥
मातासे सुत पूछै बाता । पिता हमार कहाहै माता ॥
पुत्रनते कह आदि भवानी । पिता तुमार हमहुं नाहिंजानी॥
रचना सकल हमहिते होई ।हम तुम तुम हम और न कोई॥
तुमहो पुरुष हमहि तोर जोई । हम तुम दूसर और न कोई ॥
हमहै पिता हमही है माता । हमही तीन लोकके दाता ॥

जब जननी अस बचन उचारा। सुनि संसै कर तिहूं कुमारा ॥
माता कपटकीन हम पाहीं। पिताको भेद बतावत नाहीं ॥
तीनो बालक ताते रूठै। जननी बचन कहैं सब झूठै ॥
तब माता बोली रिसिआई। पिताको दरश करहु तुमजाई ॥
माता कह तुम पुष्प चढ़ावो। पिताको शीस परसिके आवो॥
चले जो पुत्र पिताकी आसा। पिता रहै पुत्रनके पासा ॥
खोजत खोजत कतहु न पाई। रहे निरंजन सुन्न समाई ॥
लगी समाधि निरंजन तारी। निकसे वेद श्वास संगचारी ॥
रिगःअरु यजुर अथरबन शामा। धरि तन रटहि निरंजननामा॥
निरंकारकी अस्तुति करहीं। देव निरंजन गुन उच्चरहीं ॥
देव निरंजन दृष्टि नआवै। ज्योतिज्योतिकहि श्रुतिगुणगावै
तिहिम वेद निरखे निज नैना। अनुमानहिते भाखे बैना ॥
वेदन प्रति नभ बचन सुनाई। बासा करहु सिंधुमें जाई ॥
आज्ञा दियौ निरंजन राई। बसो वेद सागरमें आई ॥
बहुरि निरञ्जन सैन लखाई। आद्यासे अस कहौ बुझाई ॥
निज पुत्रनको आज्ञा दीजै। सिंधु मथनको उद्यम कीजै ॥
तब आद्या अस युक्ति बनाई। तीन सुता निज अंग उपाई ॥
पुत्रि न कह अस आज्ञा दीनो। बसहु जाय सागर में तीनो ॥
माताको अस आयसुपाई। तीनो सिंधुमें गई समाइ ॥
यह चरित्र जननी जो ठाना। ब्रह्मा विष्णु शंभु नहिं जाना ॥
राखा गुप्त न मर्म बताया। आद्या सुतनसेबचन सुनाया॥
सागर मथन जाहु मम बारा। पैहो वस्तु महा सुखसारा ॥
माता की जब आज्ञा पाई। चले तिहूं तिहि शीस नवाई ॥
मथ्यौ जाय सागर को सोई। कन्या तीन प्रकट तब होई ॥
तीनो कन्या जबही पाये। हर्षसमेत मातु ढिग आये॥

तब माता पुत्रन कहि टेरा । यहतो काज भयौ सुत तेरा ॥
सावित्री ब्रह्माको दीना । विष्णु लक्ष्मीको बरि लीना ॥
पारबती शंकर को ब्याहा । नारिपाय अतिमनहिउच्छाहा॥
काम विवसभे तीनो भाई । देव दनुज सबही प्रकटाई ॥
जननी पुनि पुत्रन समुझावो । सागर मथन फेरि तुमजावो ॥
जो जिहि मिले लेहु तुमसोई । तीनो पुत्र चलत तव होई ॥

सोरठा–रंचन लायौबार, चले तिहूं सुत सिंधु तट।
मथ्यौ ताहि चितधार, निकसे चौदह रतनतब ॥

चौपाई ।

चौदह रत्न निकसि जिहि बारी । ले जननीके सम्मुख धारी ॥
माताके जब आगे कीना । ताने बांटि तिहूंको दीना ॥
पायौ वेद सो ब्रह्मा लीनो । पढ़ि गुनि के बिचार सोकीनो॥
ब्रह्मा वेद पढ़न जब लागा । पढ़न वेद तब भौ अनुरागा ॥
कहै वेद पुरुष यक आही । निराकार जिहि रूपनछाही ॥
सत्य माह सो रूप देखावत । चितवत दृष्टिनजरनाहिं आवत॥
स्वर्ग सीस पग आहि पताला । यह सब देखो ताको ख्याला ॥
ब्रह्मा विष्णुसे कह समुझाई । तुमहू शंभु सुनो चितलाई ॥
आहि पुरुष यक वेद बतावा । वेद कहै हम भेद न पावा ॥
तब ब्रह्मा माता ढिग आये । करि प्रनाम तेहि शीस नवाये ॥
हे माता मोहि वेद बतावा । सिरजनहार और बतलावा ॥

दोहा–ब्रह्मासे माता कहे, सुन सुत मेरी बात ।
सप्त स्वर्ग है शीस जिहि, चरण पतालहै तात ॥
जौं इच्छा तोहि दरशकी, पुष्प लेहु तुम हाथ ।
बेगि सिधारो ताहि ढिग, जाय नवावो माथ ॥

चौपाई ।

ब्रह्मा मातहि शीस नवाई । उत्तर दिशा बेगि चलि जाई ॥

तिहि अस्थान पहूँचे जाई । नहिं तहँ रवि शशि सुन्न रहाई ॥
बहुबिधि अस्तुति करे बनाई । ज्योति प्रभाव ध्यान तहँ लाई ॥
करते ध्यान गये युग चारी । माता शोच पुत्रकर भारी ॥
ब्रह्मा तात दरश नहिं पावा । शून्यध्यान युग चारि गवावा ॥
किहि विधि रचना रची बनाई । ब्रह्मा आवै कौन उपाई ॥
उपटि शरीर मैल गहि काढ़ी । पुत्रीरूप कीन रचि ठाढ़ी ॥
शक्ति अंश निज ताहि मिलावा । नाम गायत्री तासु धरावा ॥
गायत्री मातहि शिर नावा । चरन टेकि रज शीस चढ़ावा ॥
गायत्री बिनवै करजोरी । सुन जननी विनती यक मोरी ॥
कौन काज मोकहं निरमाई । कहो वचन लेव शीस चढ़ाई ॥
कह आद्या पुत्री सुन बाता । ब्रह्मा आहि जेठ तव भ्राता ॥
पिता दरश कहँ गये अकाशा । आनहु ताहि वचन परकाशा ॥
दरश तातको वह नहिं पावै । खोजत २ जन्म सिरावै ॥
जौनी विधि वह इहा आई । करहु जाय तुम तौन उपाई ॥
चलि गायत्री मारग जाई । जननी बचन प्रीति चितलाई ॥
गायत्री पहुँची तहँ जाई । ब्रह्मा जहाँ समाधि लगाई ॥
लगी समाधि ब्रह्मकी गाढी । गायत्री शोचे तहँ ठाढी ॥
केते द्यौस रही सो ताही । ब्रह्मा पलक उघारे नाहीं ॥
गायत्री तब शोचन लागी । कौन भाँति ब्रह्मा अब जागी ॥
निजु मनमें बहुते अनुमानी । आद्या ताके ध्यान समानी ॥
आद्या ध्यानमें ताहि सिखाई । परसो निजकर ब्रह्मा पाई ॥
गायत्री पुनि कीनहु तैसो । जननी युक्ति बतायौ जैसो ॥
तिहि औसर सो मन चितलाई । परस्यौ ब्रह्म चरन तब जाई ॥
ब्रह्मा योग ध्यान चित डोला । व्याकुल भयो ब्रह्म अस बोला ॥
कौन आहि पापिन अपराधी । काहेको मोर छोडाय समाधी ॥

शाप देव तो को हम जानी । पिता ध्यान खंडेहु मोर आनी॥
कह गायत्री मोहि न पापा । बूझि लेव तब देहो श्रापा ॥
कहो तोहिते सांची बाता । तोहि लेन पठयौ तामाता ॥
चलहु बेगि जननीपहँ जाई । तुम बिन रचना होय न भाई ॥
ब्रह्मा कहैं कौन विधि जाई । पिता दरश अजहूं नहिं पाई ॥
कह गायत्री दरशन पैहो । चलहु बेगि नहिं तो पछितैहो ॥
ब्रह्मा कहैं देहु तुम साखी । परस्यौ शीस देखा मैं आँखी ॥
ऐसो कहो मातु समुझाई । तब तुमरे संग हम चलिजाई ॥
गायत्री कह यह है स्वारथ । कहब जानिमें पुनि परमारथ ॥
यहि विधि बोलब झूठी बाता । कौनी विधि तौ बूझे माता ॥
पुष्पगायत्री ब्रह्मा तीनी । एकमता तिहि औसर कीनी ॥
तीनों मिलिके चलि भये तहँवा । कन्या आदि कुमारी जहँवा ॥
करि प्रणाम सम्मुख रह जाई । माता सब पूछी कुशलाई ॥
कैसे दरशभो पिता सुभाऊ । ब्रह्मा सो सब मोहि सुनाऊ ॥
कहैं ब्रह्म दोनोंहै साखी । परस्यौ शीस देखाइन आँखी॥
तब माता बूझै अनुसारी । कहु गायत्री वचन विचारी ॥
तुम देखा इन दर्शन पावा । कहो सत्य दरशन परभावा ॥
तब गायत्री बचन सुनावा । ब्रह्मा दरश शीस पितु पावा ॥
मैं देखा इन परस्यो शीसा । ब्रह्माही मील्यौ जगदीशा ॥

छंद–ले पुष्प परस्यौ शीस पितु इन दृष्टिमें देखत रही।
जलढारि पुष्प चढ़ाय दीनों हेजननि है यह सही॥
माता कहे पुष्पावतीसे कहो सत्यहि मोसना ।
जो चढ़ेहु शीसपिताके तुम मोसेकहोतुम ततछना॥

सोरठा–कहु पुष्पावति मोहिं, दरसकथा निरुवारिके ।
यह बूझोमैं तोहि, जिमि ब्रह्मा दरशन कियौ ॥

चौपाई ।

पुष्पावती वचन अस बोले । माता सत्य वचन नहिं डोले ॥
दरशन शीस लह्यौ चतुरानन । चढ़न शीस यह धरनिश्चलमन
साष सुनत आद्या अकुलानी । यह अचरज भो मरम न जानी
अलखनिरंजन अस पुनिभाषी । मोकह कोइ न देखेआंखी ॥
तीनों बोलैं झूठी वानी । सुनि माता बहुते अकुलानी ॥
यह सुनि माता कीनेहु दापा । ब्रह्माको पुनि दीनेहु शापा ॥
पूजा तोर करे कोइ नाहीं । जो मिथ्या बोल्यौ हम पाहीं ॥
आगे ह्वैहै साय तुमारा । मिथ्या पाप करे बहु भारा ॥
प्रकट नियम बहु करै अचारा । अंतरमैल पाप विस्तारा ॥
विष्णु भक्तसे कर हंकारा । ताते परे नरककी धारा ॥
कथा पुराण औरन समुझावै । चाल विहीन आपदुःख पावै ॥
उनते और सुने जो ज्ञाना । करे भक्ति सो कहो प्रमाना ॥
देवन पूजा बहुबिधि लावै । दक्षिना कारन गला कटावै ॥
जाकह शीस करे पुनि जाई । परमारथ तिहि नाहिं हढ़ाई ॥
आपने स्वारथ ज्ञान सुनै है । आपन पूजा जगहि दृढ़ै है ॥
परमारथके निकट न जाई । स्वारथ अरथ सबै समुझाई ॥
गायत्री तोर बृषभ भतारा । पाँच सात अरु बहुत पसारा
धरि औतार अखज तुम खाई । बहुत झूठ तुम बचन सुनाई ॥
सुनो पुष्प तुमरो विश्वासा । होय विगंध मध्य तौ वासा ॥
जो तोहि सींच लगावै आनी । ताकर होय वंशकी हानी ॥
अब तुम जाय धरो औतारा । केवड़ा केतकी नाम तुमारा ॥

छंद-शाप तीनोंको दियो मनमाह तब पछतावई ।
कैसे करे मोहि निरंजन पल छमामोहि न आवई ॥
आकाश वानी तब भई यह कहाकी नभ वानिया ।
उतपत्ति कारनतोहि पठयौ कह चरितयह ठानिया ॥

सोरठा–नीचहि ऊंच सताव, ओल मोहिते पाय हो।
द्वापर युग जब आव, तोहि पाँच भरता रहो॥

चौपाई।

शाप ओल जब सुने भवानी। मनमें गुने कहे नाहिं बानी॥
ओल प्रभाव आपते पाई। अब कह करो निरंजन राई॥
तुमरी वश्यपरी हम आई। जस चाहो तस करो उपाई॥
आई माता विष्णु दुलारा। सुनहु विष्णु यक बचनहमारा॥
अब तुम बेगि पिता लगि जाई। बेगि पिताको परसहु पाई॥
आज्ञा पाय विष्णु तब चाला। पिता दरश कहगये पताला॥
अछत पुष्प लीन कर माहीं। चले पताल पंथ गमनाहीं॥
पहुँचे शेष नाग पह जाई। विषके तेज विष्णु अलसाई॥
भयौ श्याम विष तेज समावा। निरंकार अस वचन सुनावा॥
अहो विष्णु माता पह जाई। कहियौ सत्त बचन समुझाई॥
सतयुगत्रेता जैहै जबही। द्वापर होय चौथपदतबही॥
जब तुम हैहो कृष्ण शरीरा। लेहु ओल सो कहो बलवीरा॥
जो जीव देय पीर जेहि काहू। हम पुनिओल दिलावै ताहू॥
नाथहु नाग कालिंदी जाई। अब तुम जाहु बिलंब न लाई॥
विष्णु पहूंचे जननी पासा। कीनो सत्त वचन परकाशा॥
भेत्यौ नाहिं मोहि पद ताता। विषके ज्वाल श्याम भो गाता
व्याकुल भयौ तवहि फिरि आई। पितादरश नाहीं हम पाई॥
सुनिकै हरषी आदि कुमारी। लीन विष्णु कह निकटदुलारी॥
चूम्यौ बदन शीश दियौ हाथा। सत्य वचन बोल्यो सुतवाता॥
देहु पुत्र तोहि पिता भेटाई। तोरे मनको धोख छुड़ाई॥
प्रथमहि ज्ञान दृष्टि तुम देखो। बचन मोर हृदयेमें पेखो॥
मनस्वरूप करि ताकह जानो। मनते दूजा और न मानो॥

स्वर्ग पताल दौर मन केरा । मन अस्थिर मन फिरै अनेरा ॥
छनमहँ कला अनंत देखावै । मनकह पेखि न कोई पावै ॥
निराकार मनहीको कहिये । मनके आस द्यौस निशि रहिये
देखहु पलटि सुन्नमें ज्योती । जहाँ झिलमिली झलके मोती
यहि विधि विष्णु दरश पितुपायौ। भांति भातिको रंग दिखायौ ॥
श्वेत पीत हरि तो जंगाली । रूप अनूप गगनमें भाली ॥
सुनि बाजा हियमें हरषाना । पिता दरसते अति सुखमाना॥
बहुत अधीन मातुसे भैऊ । शीस नाय मृदुवानी कहेऊ ॥
तौ प्रसाद मम मातु विशेषा । पिताको दरश दृष्टिते देखा ॥
मातु गई पुनु रुद्रके पासा । देखि रुद्रमन माह हुलासा ॥
दोय पुत्र कह मता बतावा । माँग महेश्वर तोाह जो भावा॥
हे जननी यह कीजै दाया । कबहुन विनसै हमरी काया॥
कह जननी तुम ऐसे होही । साधो योग सत्य कहों तोही ॥
जबलो पृथ्वी अकाश सनेहा । कबहुन बिनसे तुम्हरी देहा ॥
तिहू सुतनको मता बताई । आदि पुरुषको नाम छपाई ॥
आद्या ऐसो छल बल कीना । पुरुष छपाय प्रकट यम कीना
निरंकारको भेद वतावा । पुरुषसंदेश न सुतन सुनावा॥
पुरुषभेद विष्णुहू ना जाने । निरंकारको करता माने ॥
जैसो छल बल आद्या कीना । सोई चला जक्तमें चीन्हा ॥
देखो ऐसो नारि स्वभाऊ । मात पिता कह सो विसराऊ ॥
केतो प्रीति मातु पितु करही । कन्या एक न चित्तमें धरही ॥
गै पुत्री जब स्वामी गेहा । रात्यौ रंग तासुकै नेहा ॥
मातु पिता तवही विसरायौ । अपने पतिकी नारि कहायौ ॥
आदर मान खसमको होई । पिताको नाम लेय नहिं कोई ॥
ताते आद्या भई बिगानी । काल अंग ह्वै रही भवानी ॥

ब्रह्मा निज मन कीन उदासा । तब चलि गये विष्णुके पासा ॥
जाय विष्णुसे बिनती ठाना । तुमहो बुद्धिदेव परधाना ॥
तुमपर माता भई दयाला । हमतो आपबस भये विहाला ॥
निज करनी फल पायौं भाई । कैसे दोष लगावौं माई ॥
अब सो यतन करो हो भ्राता । चले परिवार बचन रहै माता ॥
कहैं विष्णु छोड़ों मन भंगा । मैं करि हौं सेवकाई संगा ॥
तुम जेठे हम लहुरे भाई । चित संशय सब देहु बहाई ॥
जो कोइ होवे भक्त हमारा । सो सबही तुमरो परिवारा ॥
यज्ञ धर्म पूजा जो होई । विप्र विना कछु होय न सोई ॥
जक्तमें ऐसो ज्ञान दृढ़ावै । पुन्यफलनकी आस लगावै ॥
जो कोइ करे द्विजनकी सेवा । हरषित हो तिहि विष्णू देवा ॥

सोरठा–ब्रह्मा भये अनंद, जबहि विष्णु अस भाषेऊ ।
मेलौ मनको द्वंद्व, साष मोर सुखते रहै ॥

चौपाई ।

ब्रह्मा भाष्यौ झूठ संदेशा । ताते ताको भयौ अंदेशा ॥
विष्णु जो साची वचन सुनाया । माता कीन ताहिपर दाया ॥
शिवलजायके चुप ह्वै रहेऊ । झूठ साच एको नहिं कहेऊ ॥
ढूंढत पिता तिहू गे हारी । पिताको रूप न कतहु निहारी ॥
माता कही बिहसि निज बानी । ब्रह्मा झूठ झूठ की खानी ॥
शिवकछु झूठ साच नहिं भाखो । ताते योग ध्यान चितराखो ॥
योग समाधि करो अब जाई । जटा रखाय बिभूत रमाई ॥
माता विष्णु से बोलै बानी । तीन लोक करि हो रजधानी ॥
शिव ब्रह्मा करिहै तोहि सेवा । गनगंधर्व रचिहो मुनि देवा ॥
चार बरण ब्रह्मा निरमाई । चार वेद मत चार चलाई ॥
शिवके बरण भेद ना होई । क्रोध रूप धरि भेष बिगोई ॥

मातु जो दया विष्णुपर कीने। पिता देखाय निकटही दीने॥
माता पिता एक मिलि गैऊ। विष्णु देखि के हर्षित भैऊ॥
मात पिता सुत एकैं ठैऊ। विष्णु समाधिज्योति मिलिगैऊ॥
तीनो मिलि जब एकैं भैऊ। तिहि पीछै जग सिरजै लियऊ॥
तब माता अस बचन उचारा। रचो सृष्टि तुम तीनो बारा॥
अंडज उत्पति कीनी साता। पिंडजको ब्रह्मा उतपाता॥
उखमज खानि विष्णुब्यौहारा। शिव थावरको कीन पसारा॥
चौरासी लख जूनी कीना। आधा जल आधा थल दीना॥
नौलख जलके जीव बखाना। चौदहलख पंछी परमाना॥
कृमी कीट सत्ताइस लाखा। तीस लक्ष अस्थावर भाषा॥
चतुर लक्ष मानुष परमाना। मानुषदेह लह पद निर्वाना॥
और योनि परच नहिं पावै। तत्त्वहीन भव भटका खावै॥
एकतत्त्व अस्थावर जाना। उखमज दोय तत्त्वपरमाना॥
अंडज तीन तत्त्वगुन जाना। पिंडज चार तत्त्व परमाना॥
ताते होय ज्ञान अधिकारा। मानुष देह भक्ति अनुसारा॥
अंडज खानि तीन ततब्यापा। वायूतेज तीसरो आपा॥
थावर एक तत्त्वहै पानी। उखमज वायु तेजते सानी॥
पिंडज चार तत्त्वसे बरनी। पौनो पावक जल अरु धरनी॥
पिंडज नरकी देह सँवारा। ताते पंच तत्त्व विस्तारा॥
नर नारीमें तत्त्व समाना। ज्ञान विभेद ताहुमें जाना॥
चारो खानि जीव भरमावा। तब मानुषकी देहीं पावा॥
पांच तत्त्व मानुष विस्तारा। तीनो गुण तेहि माह सँवारा॥
देह धरें छोडे जस खानी। तैसो ज्ञान लहै सो प्रानी॥
प्रथम कहो अंडजकी खानी। दारिद्री निद्रा अलसानी॥
चोरी चुगली निंदा माया। घर वनझाड़ी आगि लगाया॥

तृष्णा दूत भूत सेवकाई । रोवै कभीके मंगल गाई ॥
और को देत देखि पछिताई । गुर सतगुर चीन्है नाहिं भाई ॥
वेद शास्त्र सब देत उठाई । आपन मत सबही दरसाई ॥
जगमें और तुच्छ सब आही । मोहि समान बड़ को जगमाही॥
मैले वस्त्र सो नहीं नहाई । आंखि चीपर मुखलार बहाई ॥
पासा जूवा खेलै दाऊ । कूबर मूंड अरु लामा पाऊ ॥
दूजी उखमज खानि कहावा । तातै जो नर देही पावा ॥
जायसिकार जीव कहमारा । बहुत अनंद होय तिहि बारा ॥
बहुविधि मासु रांधिकेखाई । गुरुको मेटि करे अधिकाई ॥
निंदै नाम शब्द गुरु देवा । बहुत बात कथ ज्ञानको भेवा ॥
झूठी बचन सभा में लाई । टेढी पाग छोर ओर माई ॥
दयाधर्म मनमें नहिं आवै । करे पुन्य तिहि हासी लावै ॥
मालातिलक अरु चंदन करई। हाट बजार चिकनपट धरई ॥
अन्तर पापी ऊपर दाया । सो जिव यमके हाथ बिकाया ॥
लम्बा दन्त अरु वदन भयावन । पीरे नैन ऊँच अनपावन ॥
तीजे अचल स्वानिको लेखा । देह धरेते होय जो भेखा ॥
छिनक बुद्धि होवै जिव केरा । पलटत बुद्धि न लागै बेरा ॥
झंगा फेटा शिरपर पागा । राजद्वारसे वामे लागा ॥
घोडपर होवै असवारा । तीर खड्ग अरु कमर कटारा ॥
इतउत सैन चित्तसे लावा । परनारीको सैन बालावा ॥
परघर रति कह चोरी जाई । शरमभाव उपजै नहीं भाई ॥
छन यकमें कर पूजा सेवा । छन यकमें बिसरे सो देवा ॥
छन यक मनमें सूरा होई । छनयक मनमें कादर सोई ॥
छन यक मनमें करे सुधर्मा । छनयक माह करे अपकर्मा ॥
भोजन करत माथ खजुआवै । बाँह जाँघ पुनि मीजत जावै ॥

भोजन करे सोय पुनि जाई । जो जगाव तिहि मार धाई ॥
आँखी लाल होय पुनि वाको । और अनेकन लक्षण ताको ॥
चौथे पिंडज खानि सुनावो । गुनऔगुनको भेद बतावो ॥
वैरागी उन मुनि मत धारी । धर्म पुण्यकर वेद बिचारी ॥
तीरथ पुण्य अरु योग समाधी । गुरुके चरण चित्त बल बांधी ॥
पढ़े पुराण कथे भल ज्ञाना । सभामें बैठि बात भल ठाना ॥
राजभोग कामिनि सुख माने । मनशंका कबहूँ नाहिं आने ॥
धन संपति सुख बहुत सोहाई । लौंग सोपारी बीरा खाई ॥
खरचै दाम पुण्यमें सोई । हृदये सुख पुनि ताके होई ॥
चक्षु तेज ताकर अति मानी । परा कर्म देही बल ठानी ॥
देखो खड्ग सदा ता हाथा । प्रतिमा निरखि नवावै माथा ॥

सोरठा—छूटे नरकी देह, जन्म धरो फिरि आय जब ।
ताको कह्यो सनेह, धर्मदास सुन कानदे ॥

चौपाई ।

आयू आंछत जिव मरिजाई । जन्मधरे मानुषको आई ॥
शूरा होय सो रणके माहीं । भैडर ताके निकट न जाहीं ॥
माया मोह ममता नहिं व्यापे । दुरमति ताहि देखि डर कांपे ॥
सत्यशब्द परतीतकै आनै । निंदारूप कबहुँ ना जानै ॥
सतगुरु चरण सदा चित राखे । प्रेम अरु प्रीति दीनता भाषे ॥
यहिविधि चारो खानि बनाया । सबमें रमे निरंजन राया ॥
कर्मजाल मह सबै फसाई । रेखाकर्म प्रत्यक्ष देखाई ॥
कर्मकी रेख लिखे सब माही । ताते जिव भवमें भरमाही ॥
लिखे निरंजन कर्मको रेखा । ताते जीव धरे बहु भेषा ॥
कर्मरेख कबहू नाहिं छूटै । फिर २ जीव निरंजन लूटै ॥
चारि खानि रचि कियौ पसारा । चारबरन पाखंड व्यौहारा ॥

चौरासीलख योनी कीना। चार खानि जिव एकै चीन्हा ॥
चौरासीलख वचन बखाना। चारखान जिव एक समाना ॥
रचना रचे सृष्टि बहु रंगा। कामदेवकी कला अनंगा ॥
सुर नर मुनि गण काम तरंगा। पशु पक्षी सबहीके संगा ॥
कर्मकाल सबही भरमावा। शिवशक्ती संग कला नचावा ॥
कनक कामिनी फंद बनाया। तिहि फंदे सबही अरुझाया ॥
जाति पांति कुल मान बडाई। ब्रह्मा यह यम फंद बनाई ॥
शिव शक्ती द्वै रूप बनाया। नारि पुरुषसो नाम धराया ॥
भगद्वारे ह्वै सब जग आया। भगभोगनको पुरुष कहाया ॥
नखशिख रची काल फुलवारी। फूल कुबास बास सँवारी ॥
कनक कामिनी काल बनाई। चार खानिमें रही समाई ॥
कामिनि काम संवारा ज्ञानी। चारो खानि रहा विष सानी ॥
कालकर्मकी खानि बनाई। सब संगतमें रहा समाई ॥
सुर नर मुनि सबहीको डहके। चार खानि सबही घट महके ॥
तीनो देव निरंजन रूपा। येई भवसागरके भूपा ॥
चारो मिलि सब सृष्टि संवारी। पंचम कहिये आदि कुमारी ॥
जहाँ तहां तीरथ व्रत दाना। देवल देव पूजा पाखाना ॥
मथुरा तीनदेव औतारा। ब्रह्मा पुनि काशी पगधारा ॥
यहिबिधि आद्या साज्यौ साजू। तिहु पुत्रन कह दीनो राजू ॥
मथुराते चलि आदि भवानी। कोटकांगड़े पहुँची आनी ॥
कोट कांगड़े करि निज थाना। हींगलाज पुनि कीन पयाना ॥
आदि भवानी रही तहांई। तिहू पुत्र जगराज कराई ॥
नाना भांति कर्म बिस्तारा। वेद कतेब परपंच अपारा ॥
भर्मजाल जगमें फैलाई। नरनारी तामें अरुझाई ॥
जह तहँ तीन देवकी सेवा। कोइ न जान पुरातम देवा ॥

तीन देव निज हुकम चलाई। अद्याहूको नाम छपाई ॥
तीनदेव सेवै संसारी। पूछै नहिं कोइ आदि कुमारी ॥
तब अद्या मन माह बिचारा। मम सुत मेरो महातम टारा ॥
कीनो तब असयुक्ति भवानी। ऐसो कलारूप गुनखानी ॥
तीनशक्ति निज तन प्रकटावा। महामोहनी रूप बनावा ॥

दोहा—रंभा सूची रेनुका, तीन रूप निज कीन।
सबगंधर्बनको मोहि मन वश अपनी कर लीन ॥

चौपाई।

तिहूरूप मोहनी बनाई। सब गंधर्ब निज संग गहाई ॥
भांति भांतिके वस्त्र अनूपा। भूपन भूषित अद्भुत रूपा ॥
छत्तिस भांतिका बाजा लेई। चली त्रिदेवपाह तव येई ॥
रागरागिनी यकसठ जाती। महा मधुर सुर गाव सुभांती ॥
तीनदेव सुर नर मुनि झारी। निज वस करि लीने तिहुनारी
जगमें अपनो अदल चलाई। जहँ तहँ शक्तीसिव थपाई ॥
तीनो देव निरंजन शक्ती। इन पांचोंकी सब कर भक्ती ॥
मन ॐकार निरंजन राई। अलख शून्य अविकार कहाई ॥
कैलकाल निर्गुन निरंकारा। धर्मराय यम ब्रह्म पुकारा ॥
इत्यादिक बहु यमके नामा। रमै सर्वमें सोई रामा ॥
जैसे तिलमें तेल समाया। तिमि सब माह निरंजन राया ॥
मनसे और नहीं बरिबंड़ा। गाजै तीनलोक नौ खंड़ा ॥
सुर नरमुनिसबछलि छलिमारा। कोई जीव नहिं बचा कड़ारा ॥
रचना रुचिर अपार बनाई। सकल जीवको सोभरमाई ॥
कबहुके हेठ कबहुके ऊपर। कबहुके डारि देय जिव भूपर ॥

पंजाबी भाषा—छंद झूलना।

इत्थते उत्थ कर उत्थते इत्थ धर जित्थेही जाय जिव नाहिंछुट्टै॥

भट्ट तिहु लोकहै नट्ठ जित जाइये तित्थही तित्थही कालकुट्टै ॥

सत्यकबीर बचन।

तीन लोकमें लागी आग। कहैं कबीर कह जैहो भाग ॥

चौपाई।

पूर्व प्रसंग करो पुनि वर्णन। कूर्म पाहि जिमि गयेनिरंजन॥
तीन माथ जब ताको छीना। बहुरि शून्यमें वासा कीना॥
कूर्म भये तिहि काल दुखारी। ध्यानमें पुरुषते बचन उचारी॥
अहो पुरुष दाया भल कीना। मोकह धर्मराय दुःख दीना॥
यहिबिधि पुरुष पैं कूर्म पुकारी। तब सतपुरुष दया उर धारी॥
बोले तब अस पुरुष पुराना। सुनो कूर्म मम बचन प्रमाना॥
यह तो काल भयौ अन्याई। जो मैं ताहि देव बिनसाई॥
तौ सबही रचना मिटि जैहै। सोलह पुत्र सबहि बिनसैहै॥
सोलहपुत्र एकही नाला। ताही सूत मध्य यह काला॥
बिषयते रचित निरंजन देही। मम दरसन अब पावन येही॥
लक्षजीव नित करे अहारा। सवालक्ष नित प्रति बिस्तारा॥
यहिबिधि आप दीनप्रभु तेही। परमपुरुष ढिग जाय न येही॥
रचनाकरि पुनि भोजन करई। सबमें रमै न सो लखि परई॥
षट दरसन छानवे पाखंडा। धर्म कर्म जहँलो महि मंडा॥
सो सब आहि निरंजन खेला। गह जिव त्रिगुन शक्तिकेमेला॥
नाना भांतिको धर्म चलाई। जक्त जीवको सो भर माई॥
एक विरुद्ध पंथ कर दूजा। नानाबिधिके थापे पूजा॥
सबहि अमायके भोजन करई। कालकला नहिं जिवलखिपरई॥
चार मुक्ति जो वेद बखाना। सो सब देब निरंजन थाना॥
योग युक्ति सब तासु पसारा। पुरुषद्वार ते परदा डारा॥
मुक्तिपंथ नहिं पावै कोई। कालभ्रमावै सब नर लोई॥

तप्त शिला यक नाम पुकारा । सब जिव पकरिताहिपरजारा ॥
तप्त शिलापर जो जिव पर ही । हाय हाय करिचटपट करही ॥
तलफि तलफिजिवतहरहिजाही। भूनि भूनि सब यम धरिखाही
केते युग जीवन धरि खायौ । जारि बारिके योनि भ्रमायौ ॥
जरत जीव जब कीन पुकारा । काल देतहै कष्ट अपारा ॥
यमको कष्ट सहो नहिं जाई । हो साहिब दुःख टारो आई ॥
यहिविधिःजिवजबकीनपुकारा । पुरुष दयाल दया उरधारा ॥
तब पूरुष ज्ञानीको टेरो । ज्ञानी सुनिये आज्ञा मेरो ॥

सत्यकबीर वचन ।

छंद–जब देखि जीवन कह विकल तब दया पुरुष जनाइया ।
दया विधि सतपुरुष साहिब तबै मोहि बोलाइया ॥
कह्यौ मोहि समुझाय बहुविधि जीव जाय चितावहो ।
तुम दरशते जिव होय शीतल जाय तपत बुझावहो ॥
सोरठा–आपा लीनो मानि,पुरुष सिखावन शिर धर्यौ ।
तत्क्षण कीन पयान, शीस नाय सतपुरुषको ॥

चौपाई ।

आयौ जहँ जहँ जीव सतावै । काल निरंजन जीव नचावै ॥
चटपट करे जीव तहँ भाई । ठाढ भयो मैं तहँ पुनि जाई ॥
मोहि देखि जिव कीन पुकारा । हो साहिब मोहि लेव उबारा ॥
तब हम सत्य शब्द गोहरावा । पुरुष शब्द ते जीव जुड़ावा ॥
सब जीवन मिल अस्तुति लाई । धन्यपुरुष यह तपत बुझाई ॥
यमते छोरि लेहु मोहि स्वामी । दया करो उर अंतरयामी ॥

इति ।

अथ जीवनकी स्तुति–छंद तोटक ।

जयसत्य कबीर कृपाल घनं, दल दुष्टहनं पय पुष्ट जनं ॥

योगजीत अतीत पुनीत प्रभू, धारण कारन तारनभू ॥
सत सुकृत सत्यस्वरूप सदा, जन ध्यावत पावत मुक्तिपदा ॥
मुकता मनिते जिव जो जुगता, मृतलोक सशोकन भौ भुगता ॥
हम दीन दुःखी किमि त्याग चहो, करुणामय हो करुणामयहो॥
करुणातनधार करी करुणा, करुणामयधौं करुणा वरुणा ॥
सुर सिद्ध बखानत खान दया, जिव देखि अनाथसनाथ किया॥
यहि ज्वाल जला यम भक्ष करे, बिन देव दयालको रक्ष करे ॥
यम जालिम जीवन जेर कियौ, सुधि लेत दयोदधि देरकियौ ॥
सुख लेशन के तक लश भरे, जगदीश परे जगदीश परे ॥
जिव काल करालके ज्वाल दहे, तर ऊपर भूपर धाय गहे ॥
हम जानि दयाल जो काल भजे, गुणग्रामप्रनाम सो नामतजे॥
घटवाह मलाह सलाह कहो, फिरकै लकि गैलको सैलन हो ॥
वह सिंह समान शिकार करे, प्रिय पीव बिना कह जीव तरे ॥
हरि केहरि देहरि पार करो, सरकार बडे बरकार करो ॥
भयभंजन रंजन दासनको, खल डाटत काटत फांसनको ॥
भवसागर झागर काल बली, तह जीवकि उक्तिनयुक्तिचली॥
नाहिं एक उपाय बनाय बनी, करु काजगरीब निवाज गनी॥
प्रभु पेखतही जिव शीतलहै, श्रुति वेद पुराण बखानत है ॥
करुणा हग कोटिन काल हनै, खुरसिंधु कणा गिर बंधु बनै॥
मतिधीर कबीर कबीर भजो, हितनाम प्रियाविननाम तजो॥
तपखान कृशान शिला दहके, जरते प्रभु मारगते बहके ॥
तलफै तप तीख सभी तलते, बिन नाथ किने हन सोपलते ॥
निजुसृष्टि निवाजसुदृष्टि लखो, सिरपै समरत्थ जो हत्थरखो ॥
नरबाल बेहाल निहाल महीं, दुःखद्वंद दवारिन देह दही ॥
मनभौ मदमोचन लोचनहै, जनरक्षक भक्षक पोचनहै ॥

सबलायक नायक हंसनके, जिवमोषक पोषक अंशनके ॥
सरवोपर साहिब शीवनके, तुम जीवन नाथहो जीवनके ॥
प्रभुके भ्रमते यमते बजरे, यहि तप्त शिलापर आनिजरे॥
तपिया जपिया न पिया परखे, विधि वेद लवेद ते हरखे ॥
जिवकाज चले शिरताज सभी, महाराजमयासुख साज लभी॥
भवभार हरो करतार धनी, धर्मरायन पाय दुःखाय दुनी॥
करि नेह बिदेह जो देह घृतं, शवदामृत जीव भे कृत्तकृतं ॥
मृत नायक सायक तीख हते, पदप्रीत प्रतीत सहीत गते ॥
परमारथि भारथि नाथ सदा, गह तेल हते भव पाथ हदा ॥
जनजाय समाय अमाय पदा, शुभज्ञान फुरानन सान मदा॥
मुनि मानस हंस मुनीन्द्रमता, समता लहपाय पता रमता ॥
तब नाम सुधाबसुधा जो पिया, न क्षुधा युगही युग जीवजिया॥
दुःखियाहितआय महा सुखिया, लखि पीवहिजी वभये सुखिया॥
कहु और न दौर तो पौर परे, सरनी परनीं करनी नखरे ॥
पद तीर कबीर शरीर जेते, लह सारभे ब्रह्म अकार तिते ॥
जग योनि जहान महान महा, गुरुदेवको भेव नते बलहा ॥
कमलापतिक्यों कमलापतिहो, पदकीरति कीरति कीरतिहो ॥
मृगब्याध समाध अगाध गहे, कलपानसिरान नध्यान लहे॥
गुनगाय फनीं गणराय निती, नहिं पावत पार अपार गती ॥
लवलीन प्रवीन नवीन जसै, कलिपंक कलंक निशंक नसै ॥
बिषया बनराय भुलाय परे, दुःखदौनाबिना कर कौन धरे ॥
कह कौन संदेश अंदेश बडा, भगभूलि गई ठगआनि अडा॥
शिव शोककि झोकमें झूलिरहा, करता भरता भ्रम भूलि रहा ॥
तिहुलोकबिलोक लगी अगिनी, यह जामिनहै यमकी भगनी ॥
तब सूरको नूर जहूर हुआ, ममता रजनी दुःख दूर हुआ ॥

सगरे झगरे रगरे बगरे, पशुज्ञान गहे डगरे डगरे ॥
बकचाल सभी न मरालमती, बिन एक रतीबन एकरती ॥
जब गर्भमें अर्भक अर्ज करे, तिहि गाढतेसाहिबगाढिधरे ॥
इत औरहिढालकोख्याल खिला, बुधि खत परेयहि तत शिला॥
वह औध अचेत सुखोपतिसो, कह पाय पराग बनारसको ॥
निजु धामते राम पयामलिया, जगती भगती पदपाय पिया ॥
कितहो झलकी मनसा मलकी,अरु अंध अचेतकिभयटलकी॥
द्धुगदानि कि बानि बिहानि इतै, मकरंदके फंदको जीव जितै ॥
मृतशृंगन बिंग बिहार करे, क्रम रेख विशेष न देख परे ॥
नहिं क्रोधित अंध कि गंध मिले, जिव दंडक भंडक भीर हिले ॥
गुरुपीर कबीर उजागरहै, भव बोहित सोहित सागर है ॥
जगबंदन भर्म निकंदनहै, सरनी सतलोक कि संदनहै ॥
सतनाम सनेह सुधाम चढे, कलिमा कलिमा कलिमाह पढे ॥
गुणग्राम निकाम कबीर कबी, जस गावत पावत कोटि छबी ॥
धुरधर्म धराधर धार कहो, भवतारक पंथ प्रचार कहो ॥
नर पामर घामर बुद्धि बिना, यमज्योति पतंगके ढंग बना ॥
जग व्याधि अरु आध असाध करे, चरणाम्बुज चूरण चारुहरे ॥
भवतारन हेत निकेत कृपा, पयगाम लियौ सुखधाम नृपा ॥
सुरभूप स्वरूप अनूप छिपा, रवि सोम जो कोटि करो मदिपा ॥
गुरगुप्त कियौ धुरको बरनं, भवभौंर भयावन तौ शरनं ॥
हमरे उरके पुर बासकरो, निज दासनको अब दास करो ॥
बिन कंतके भौ जलजंत घने, दुःखद्वंद कफंद कफंद फने ॥
जगमाह कि बाह निबाह लहे, भ्रमभो डरभे डरभीर बहे ॥
दनुजात बलात निपात भये, रणधीर बहीर गहीर गये ॥
जिहि जानत जान सुधाम धरे, मुनिके मन मंदिरमें बिहरे ॥

मनमत्त मतंग मते यहि गौं, तुहि रावत होय महा उतजौं ॥
चितचंचर बंचर बंचकहै, समसंच बिरंच न रंचक है ॥
यम वंकट संकट जीव महा, दमको गमको रमको न रहा ॥
भवसेत अभय पद देत तुही, कलिकंटक कोटिन कर्म दही ॥
चढि सेत पपीलन ढील तहाँ, लंघि दीन पयोनिधि पीन महाँ ॥
नहिं वज्रको हाड न चाड रहो, मन वाक शरीर कबीर कहो ॥
गुरु नेह न दीसन दीस जिन्हैं, सुखवासन आसहै त्रास तिन्हैं ॥
तुम दीनन बंधु न पीननके, नित पासहो दास अधीननके ॥
मद मान मलान हिये अरभौ, नरनागर सागर भौ गरभौ ॥
करि पाप कलाप करे दुनिया, विष बीज अमीफलको लुनिया ॥
हरिमें हरिमें हमहीं वरषे, लहरी भवभक्ति हरी हरषे ॥
दुखदारिद वारिद ज्ञानघनं, निरभय करि भय शमनं शमनं ॥
जिव कालके जाल परे वपुरे, सतनाम निकाम सदा जपुरे ॥
गुरुभक्ति निनार किनार गहे, चतुरे लुतरे भवधार बहे ॥
भ्रमभूलते मूलते जात भगे, बुध बालन डालन पात लगे ॥
मनबाचक याचक हौं दरको, तुम छोड अजोड सभी घरको ॥
प्रभु नामको दाननिदान चहो, कोइ आसरुबास विकासनहो ॥
तरनी बरनी तब नाम जहां, गहिये लहिये बिशराम तहाँ ॥
रसना रसरास रसै रससो, जसतौ बस और सबै कसहो ॥
चढ नाम रथा गइ बीत बिथा, रसना रसना बिन कीर्त कथा ॥
पदपंकज प्यार जो छूटि गया, अरु सूत सनेहको टूटि गया ॥
ठगठाकुर आनिके जूटि गया, जगजीवनकी बुधि छूटि गया ॥
रहगी रमते बड़ि भीर भई, सतपंथ बिहाय कुपंथ लई ॥
गुरुभक्ति बिना भव भूलि परे, शरणागत पाहि कबीर हरे ॥

दोहा—यह कबीर पंचाशिका, पढ़ै सप्रीति प्रतीत।
परम पुरुष पद पावही, काल कष्ट जा बीत॥

इति श्रीकबीर पंचाशिका।

सत्य कबीर वचन—चौपाई।

तब हम कहा जीव समुझाई। जोर करो तो वचन नसाई॥
जब तुम जाय धरो नर देहा। तब तुम करि हो शब्द सनेहा॥
पुरुष नाम सुमिरन सहिदानी। बीरा सार करो परमानी॥
देह धरे सत शब्द समाई। तब हंसा सतलोकहि जाई॥
देह धरे कीने जहँ आसा। अंतकाल लीनो तहँ बासा॥
अब तोहि कष्टभयौं जिव आनी। ताते यहि बिधि बोलो बानी॥
जब तुम देह धरो जग जाई। बिसरे पुरुष काल धरिखाई॥

जीव वचन-चौपाई।

कहै जीव सुन पुरुष पुराना। देह धरे बिसरो नहिं ज्ञाना
पुरुष जानि सुमिरौ यमराई। वेद पुरान कहैं समुझाई॥
वेद पुरान कहै मत येहा। निराकारसे कीजै नेहा॥
सुर नर मुनि तैतीसो क्रोरी। बंधे सबहि निरंजन डोरी॥
ताके मतकीने हम आसा। अब यहजानि परा यमफांसा॥

ज्ञानी वचन--चौपाई।

सुनो जीव यह छल यमकेरा। यह यमफन्दा कीन घनेरा
छंद—कला कला अनेक कीनो जीव कारन ठाट हो।
वेद पुरानो शास्त्रस्मृती याते रूँध्यौ बाट हो॥
आप तनधरि प्रकट ह्वै यम सिफत आपन कीनहो।
नाना गुन मन कर्म फाटो जीव बंधन दीन हो॥
सोरठा—कला कला परचण्ड, जीव परे बस कालके।
जन्म जन्म सह दण्ड, सत्य नाम चीन्हें बिना॥

चौपाई।

छन यक जीवनको सुखदैऊ। जिव बँध मेटि पुरुष पहँ गैऊ॥

अथ जीवमुक्तावन हेत सत्य कबीरको संसारमें आगनकथा चौपाई।

याहि बिधिकाल जक्तधरि खायौ। जिवनहिंकोई मुक्तिपद पायौ॥
तीनों पुर पसरा यम जाला। सकलजीव कहँकीन बिहाला॥
कालके करते जीव न छूटे। बहुविधि योगयुक्तिमें जूटे॥
बिनशत शब्द न जीव उबारा। तब समरथ अस बचन उचारा॥

सत्य पुरुष वचन—चौपाई।

कैल सकल जग बारचौ खाई। एको जीव लोक नहिं आई॥
तातै समरथ मोहि फरमाई। साचे जीव आन मुक्ताई॥
पुरुष वचन कीने तिहि बारा। ज्ञानी बेगि जाहु संसारा॥
प्रथमहि चल्यौ जीवके काजा। पुरुष प्रताप शीस पर छाजा॥
सतयुग सत्य सुकृत मोर नाऊँ। आज्ञा पुरुष जीव बर आऊ॥
करि परनाम तबै पगधारा। पहुंच्यौ आय धर्म दरबारा॥
द्वीप झांझरी नाम बखानी। कैल पुरुषकी सो रजधानी॥
पगके देत झांझरी गाजा। कैल पुरुष बैठा तहँ राजा॥
गये झाँझरी द्वीप मझारा। गर्बित काल न बुद्धि बिचारा॥
मो कह देखि धर्म ढिग आई। महाक्रोध बोले अतुराई॥
योग जीत इहवा कस आवो। सो तुम हमसे बचन सुनावो॥

योगजीत वचन—चौपाई।

तासे कह्यौ सुनो धर्मराई। जीवकाज संसार सिधाई॥
तुमतो कष्ट जीवनको दीना। तबहि पुरुष मोहिआज्ञाकीना॥
जीव चिताय लोक ले आवो। काल कष्टते जीव छोड़ावो॥
ताते मैं संसारहि आवो। देय परवाना लोक पठावो॥

अथ कालपुरुष और सत्यकबीरका युद्धवरण—चौपाई।

काल क्रोध करि बचन उचारा। भवसागरमें राज हमारा॥

तुम कसजिव मुक्तावन आवा । मारो तोहि अबहि भलदावा ॥
काल अनंत रूप तब धारा । योगजीत कह आनि प्रचारा ॥
महाभयंकर रूप बनावा । गज स्वरूप है सम्मुख धावा ॥
सत्तरयुग हम सेवा कीना । पुरुष मोहि भवसागर दीना ॥
परमपुरुष सेवा बस भैऊ । राज तिहूं पुरको मोहि दैऊ ॥
तब तुम नारि निकारौ मोहि । योगजीत नाहिं छोडो तोही ॥
असकहि धाय सुंड फटकारा । दंतसो योग जीत परमारा ॥
योगजीत कै लहि ललकारा । गहि कर सुंड दूर तिहिडारा ॥
पुरुषप्रताप सुमिर मन माहीं । मारचो सत्य शब्द से ताही ॥
ततछन ताहि दृष्टि पर हेरा । श्याम लिलार भयौतिहि केरा ॥
पंख घात जिमि होय परवेरू । तैसे कैल मोहि प्रति हेरू ॥
जब फटकार करगहे डाला । भागा काल पैठ पाताला ॥
गयौ पाताल कूर्मके आगे । योगजीत गये पीछे लागे ॥
बिनती करे कूर्मसे जाई । राखो कूर्म सरन हम आई ॥
योगजीत मोहि मारि निकारा। जिव लेजाय पुरुष दरबारा ॥
युगन युगन हम सेवा कीना। पुरुष मोहि भवसागर दीना ॥
एकपाय हम ठाढे रहेऊ। तबहि पुरुष सेवा सब भैऊ ॥
तीन लोक दीना मोहि हारी । अबकसमोंकह मारि निकारी॥
जाय कूर्मकी शरन जो परेऊ। तब ताने दाया उर धरेऊ ॥

कूर्मवचन-चौपाई ।

तबैं कूर्म उठि बिनती लाई । को तुम आहु कहाँते आई ॥
अपनोनाम कहोमोहि स्वामी। पुरुष अंश तुम अंतरयामी ॥

योगजीत वचन-चौपाई ।

तब हम कहाँ नाम मोर ज्ञानी। योगजीत हम अंश बखानी ॥
समरथ बचन जीव बर आवा । काल फाँस जीवन मुक्तावा ॥

कैलवचन ।

सुन ज्ञानी मोर बचन अलेखा । अपने मनमें करो बिवेका ॥
सत्तरयुगहम सेवा कीना । पुरुष बकसि भवसागर दीना ॥
समरथ बचन दीन मोहि हारी । तीनलोक पायौ संसारी ॥
तबकी बात रहित भै भाई । अबकसउलटी अदल चलाई॥
सबै अंश भुक्तै रजधानी । हमपर कोप भयौ तुम ज्ञानी ॥
अब जस निरणय हमै सुनावो । तस सीषा पन जानि चलावो॥

कूर्मवचन ।

तबै कूर्म बोले अस बानी । बिनती एक सुनो हो ज्ञानी ॥
जो तुम बिनती मानो मोरा । तौ हम तुमसे करे निहोरा ॥
तुमहू कैल बचन जौं मानो । तौ हम ज्ञानी निर्णय ठानो ॥
ज्ञानी सुनो पुरुष कै अंशा । धर्मरायको मेटो संसा ॥
चौका पान कजाव तुमारा । लोक वेदको काल पसारा ॥
जो कोइ करे जोर बरियाई । तौ हम ताके संगन भाई ॥
कूर्म जबै अस बिनती ठानी । ज्ञानी कैल दोहू मुखमानी ॥
फिरके कैल झांझरी आनो । ज्ञानी कैलको बचन सुनावो ॥

ज्ञानी और कालपुरुषकी वार्ता—चौपाई ।

बिना शीसके यमकी देही । काल पुरुषको चीन्हहै येही ॥
सत्य कबीरसे बिनय उचारी । सुनिये ज्ञानी अरज हमारी ॥
अपनी देह नाथ मोहि दीजै । ऐसी मोपर दाया कीजै ॥
ताकी वचन मानि हम लीना । अपनी देह कैलको दीना ॥
शीश समेत और बिन माथा । दोनो देह निरंजन साथा ॥
जब चाहे तब शीस देखाई । निज इच्छापुनि ताहि लोपाई ॥
जो साधू बैराट निरेखे । सो यह कौतुक नैनन दीखे ॥
रूप बिराट शून्यमें निरखे । निजु आगूको लेखा परखे ॥
जब षटमास मरन रहि जावै । काल कबीर कि देह छपावै ॥

अपनी देह देखावै काला । तब साधू जाने जंजाला ॥
बिना शीस जब दरसै देहा । काल पुरुष तब जाने येहा ॥
मरन काल निज साधु निहारी । होहि सचेत लगावै तारी ॥

निरंजन वचन ।

सोरठा—तुमहुँ करो बखशीश, पुरुष जो दीनो राज मोहि ।
षोडशमें तुम ईश, ज्ञानी पूरुष एक सम ॥

ज्ञानी वचन—चौपाई ।

ज्ञानी कहैं सुनो धर्मराई । जीवन कह मैं आन बजाई ॥
पुरुष आज्ञाते मैं चलि आवों । भवसागरते जीव मुक्तावों ॥
पुरुष अवाज टार यहि बारी । तौ मैं तो कह देव निकारी ॥

शब्द ।

अपने नामकी सोंकर गह मैं पाटि डरी हो ।
तना तनतकै बेटवा मारे निधिया गई बौराई ॥
देहरि चढ़िके मेहरि मारे निई देखो गरुवाई ।
पखा फोरि द्वै चोरवा निकसे बीचमें मिलि गई हस्ती ॥
सोटा चार कमरमें मारेनि निकर गई अलमस्ती ।
आसन लूटेनि वासन लूटेनि लूटे तिनपाई पौवा ॥
ताल असमोर सनहक लूटी हांड़ी चलावन डौवा ॥
हँसियाको बेंटको दोकै भूसी ईमोर न्यामत लूटी ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो दुबिधागै अब छूटी ॥

निरंजन वचन—चौपाई ।

धर्मराय अस बिनती ठानी । मैं सेवक दुतिया नाहिं मानी॥
ज्ञानी बिनती एक हमारा । सो न करो मोर होय बिगारा॥
पुरुष मोकह दीनो राजू । तुमहू देव होय तब काजू ॥
बिनती एक करो हो ताता । दृढ़ करि जान्यौ हमरी बाता॥

कहा तुमार जीव नहिं मानै । हमरी दिशभै वाद बखानै ॥
मैं दृढ़ फंदा रच्यौं बनाई । जामें जीव परा अरुझाई ॥
वेद शास्त्र सुमिरन गुन नाना । पुत्र है तीन देव परधाना ॥
देउलदेव पखान पुजाई । तीरथ व्रत जपतप मनलाई ॥
यज्ञ होम अरु नियम अचारा । और अनेक फंद हम डारा ॥
जौं ज्ञानी जै हो संसारा । जीव न मानै कहा तुमारा ॥

ज्ञानी वचन–चौपाई ।

ज्ञानी कहैं सुनो धर्म राई । काटो फंद जीव ले जाई ॥
जेतो फंद रची तुम वारी । सत्य शब्दले सकल विडारी॥
जिहि जिवको हम शब्द दृढैहैं । फन्द तुम्हार सबै मुक्तैहैं ॥

निरंजन वचन–चौपाई ।

सतयुग त्रेता द्वापर माही । तीनो युग जिव थोरे रहिजाही ॥
चौथा युग जब कलऊ आई । तब तुम शरन जीव बहु जाई
ऐसे बचन हारि मोहि दीजै । तब संसार गौन तुम कीजै ॥

ज्ञानी वचन–चौपाई ।

अरे काल परपंच पसारा । तीनो युग जीवन दुखडारा ॥
बिनती तोर लीन मैं मानी । मो कह ठगे कालअभिमानी ॥
चौथा युग जब कलऊ आई । तब हम अपनो अंश पठाई ॥
काल फंद छूटे नर लोई । सकल सृष्टि परवानिक होई ॥
घरघर देखो बोध बिचारा । सत्य नाम सब ठौर उचारा ॥
पांच हजार पांचसौ पांचा । तब यह वचन होयगा सांचा॥
कलियुग बीत जाय जब येता । सब जिव परम पुरुषपद चेता ॥

निरंजन वचन–चौपाई ।

ज्ञानी बिनती सुनो हमारी । द्वापर अंत होय जिहि बारी ॥
बौध शरीर धरब हम जाई । जगन्नाथको नाम धराई ॥

राजा इंद्रदौन पहँ जै हैं । मेरो मंदिर सोई उठै हैं ॥
तब समुद्र ढाहनको धावै । मंदिर मेरो तोरि बहावै ॥
कृपाकरो तब तुम तहँ जाई । मेरो मंदिर देहु थपाई ॥
जो हंसा तुमरो गुण गाई । ताके निकट तो हम नाहिं जाई॥
जो कछु वर माँग्यो धर्मराया । सो ज्ञानी दीनो करि दाया ॥
धर्मराय उठि शीस नवाई । तब ज्ञानी संसारहि आई ॥

इति ।

अथ सतयुगमें ज्ञानीजीको मृतलोकमें आगमनकथा और सत्य सुकृत नाम धारण और जक्त जीव तारण—चौपाई ।

ज्ञानी योगजीत कहलाये । सत्यसुकृत मुनींद्र बताये ॥
पुनि अचिंत मुक्तामणि होई । योग संतायन कहिये सोई ॥
अविनाशी करुणामय जानी । कबीर आदि बहुनाम बखानी॥
चारों युगके चारों नामा । सतयुग सत्यसुकृत गुणधामा ॥
त्रेतामाँह मुनींद्र नामधर । करुणामय स्वामी कह द्वापर ॥
कलियुग मांह कबीर कहाये । हिंदू मुसलमान गुणगाये ॥
सैद अहमद कबीर बखाना । शेख कबीर कहे मुसलमाना ॥
सोई सकल जक्त गुरु पीरा । नाम अनेकन ताके तीरा ॥
देश देशमें नाम है न्यारा । सारे जीव जक्तको तारा ॥
वेद पुराण जासु गुण गावै । नाम अनंत जासु निरतावै ॥
आदिकाल जब सतयुग आया । सत्यसुकृत सो नाम धराया ॥
तीन देवते कीन पुकारा । सो नाहिं माने मन हंकारा ॥
प्रथमहिं जब पृथ्वीपर आये । नृप घोघल कह नाम दृढाये ॥
सतगुरु चीन्हि चरण लपटाना । नरनायक लह पद निर्वाना ॥
पुनि सतगुरु मथुरामें आई । खेमसरीतिय तहाँ रहाई ॥
खेमसरी ग्वालिनिहिं चितावा । कुल परिवार सहित मुक्तावा ॥

पुनि सत सुकृत लोक सिधारा। पहुँचे हंस पुरुष दरवारा॥
पुरुष दरश सब हंसन पाई। कोटि सोम रवि रोम लजाई॥
पुरुष स्वरूप भये सब हंसा। बीती सब यमकी भ्रम शंसा॥
कछु दिन कीने लोक निवासा। बहुरि आय देख्यौं निजदासा॥
निशि दिन रहौं गुप्त जगमाहीं। मोकहँ कोइजिव चीन्हत नाहीं॥
जिहि जीवन पर बोध्यौ आई। दीन्हों तिनको लोक पठाई॥
सत्यलोक हंसनको बासा। सदा वसंत पुरुषके पासा॥

इति।

सतयुगको वृत्तान्त।

अथ त्रेतायुगमें सतसुकृतजीको पृथ्वीमें आगमनकथा और मुनींद्रनाम धारण और जक्त जीवतारण

सत्तकबीर वचन-चौपाई।

सतयुग गत है त्रेता आवा। नाम मुनींद्र जीव मुक्तावा॥
जब आयो जीवन उपदेशा। धर्मराय उर हुवा अंदेशा॥
इन भवसागर मोर उजारा। जिव ले जाय पुरुष दरबारा॥
कितनो छल बल करो उपाई। ज्ञानी डर मोर नाहिं डेराई॥
पुरुष प्रताप ज्ञानीके पासा। ताते मोर न लागै फाँसा॥
इनते काल बसावै नाहीं। नाम प्रताप जीव घरजाहीं॥

छंद-सतनामके परताप धर्मन हंस निज घरको चले॥
जिमि देखि केहरि त्रास गजहो कंपिके धरनी रले॥
पुरुष नाम प्रताप केहरि काल गज सो जानिहै॥
नाम गहि सतलोक पहुँचे बहुरि भव नाहिं आनिहै॥

सोरठा-सतगुरु शब्द समाय, गुरु आज्ञा निरखत रहै।
रहै नाम लौलाय, कर्म भर्म ममता तजे॥

चौपाई।

त्रेतायुग तबही पग धारा। मृत्युलोक कीनो पैसारा॥

जीव अनेकन पूछेहु जाई। यमसे को तोहि लेय छोड़ाई ॥
कहै कर्म वश जिव अज्ञाना। हमरे कर्ता पुरुष है ध्याना ॥
विष्णु सदा हमरे रखवारा। यमसे मोहिं छोडावनहारा ॥
कोई महेश कि आशा लावै। कोई चंडी देवीको गावै ॥
कहा करो जिव भयो बिगाना। खसम छोड़िकर जार बेकाना ॥
भरम कोठरी सब जग डारा। धोखा दे यम जीवन मारा ॥

साखी–सोई काल सोई है करता, भक्ति मुक्ति तिहि हाथ।
हमरो कहा न आदरे, मन यम जिवके साथ ॥
परपंची नीरंजन, मन सोई ओंकार।
फंदे तीनों लोक सब, कोई न पावै पार ॥

चौपाई।

सत्यपुरुषको आयसु पावो। कालहि मेटिछोरि जिव ल्यावो॥
जोर करो तो वचन नशाई। सहजे जीवन लेहु चेताई ॥
जो ग्रासै जिव सेवै ताही। अनचीन्हे यमके मुख जाही ॥
चहुँदिशि फिर आयौ गढलंका। जहँवा रावण बसै निशंका ॥
भाट विचित्र पर्यौ गुरुचरना। पायौ अमर धाम गहि शरना ॥
मंदोदरी प्रेममें पागी। सतगुरुके सो चरनन लागी ॥
रानीको दीनो गुरुदिक्षा। पूरण भई तासुकी इच्छा ॥
पुनि आयौ रावण दरबारा। जहाँ पौरिया रह रखवारा ॥
कह्यौ पौरियाते तब जाई। रावणको मम पांह बोलाई ॥
जबहि पौरिया खबरि जनाई। सिद्ध एक प्रभु तुमहिं बोलाई ॥
सुनि प्रभु क्रोध कीन तेहि बारा। तैं मतिहीन आहि प्रतिहारा ॥
शिवसुत मोर दरश नहिं पावै। भिक्षुक मोकहँ कहा बोलावै ॥
यह मत ज्ञान हर्यौ किन तोरा। जो तू मोहि बोलावन दौरा ॥

हे प्रतिहार सुनो यह बानी। सिद्धरूप तुम कहो बखानी॥
कौन वरन अरु कौनहै भेखा। मोसन कहो दृष्टि जो देखा॥
अहो राव तिहि श्वेत स्वरूपा। श्वेतहि माला तिलक अनूपा॥
शशिसमान तिहि रूप बिराजा। श्वेतबरन सब श्वेतहि साजा॥
मंदोदरि कह सुन रावण राजा। यह तो रूप पुरुषको साजा॥
वेगिहि आय गहो तुम पाई। तौ तुम राज अटल लै जाई॥
छोड़हो अपनो मान बड़ाई। गहो चरण तिहि शीस नवाई॥
रावण सुनत क्रोध अति कीना। जरत हुताशन जनु घृतदीना॥
रावण चले अस्त्र गहि हाथा। तुरत जाय तिहि काटो माथा॥
मारो ताहि शीस खसि परई। देखो भिक्षुक कह मोर करई॥
जहँ मुनींद्र तहँ रावण आई। सत्तर बार तरवार चलाई॥
लीन मुनींद्र यक तृणको ओटा। अतिबल रावण मार्‍यो चोटा॥
रावण अस्त्र अफल जब भयऊ। तबखिसियायके सो रहिगयऊ॥
तृण मुनींद्र लीने यहि भावन। बल तुमार देखो नृप रावन॥
काटे जो तृण कटै न तेरे। कौन भांति शिरखंडै मेरे॥
मंदोदरी कहै समुझाई। हे नृप सतगुरुको गहु पाई॥
रावण कहे सहित अभिमाना। सेवों शिव नहिं जानों आना॥
जाने अटल राज मोहिं दीना। ताहि दंडवत पलपल कीना॥
ऐसो वचन मुनींद्र पुकारी। हो रावण तुम गर्व प्रहारी॥
भेद हमारा तुम नहिं जानी। बचन एक तोहि कहो बखानी॥
रामचंद्र तोहि मारै आई। मास तुम्हार स्वान नहिंखाई॥
रावनको कीनो अपमाना। औध नग्र कह कीन पयाना॥
मारग माह चले जब जाई। मधुकर विप्र मिला तब आई॥
सो मुनींद्रके चरनन परेऊ। अतिसै प्रेम मोद मन भरेऊ॥
तापर सतगुरु कीनी दाया। सहितकुटुम्बनिजलोकपठाया॥

रामचंद्र वनभये दुखारी। तबहिं मुनिंद्र तहाँ पगधारी॥
योग युक्ति रघुपतिहि दृढ़ाई। बहुबिधि ताकहँ शांति धराई॥
जब मुनींद्रजी दाया कीने। सेतबांधि लंका पग दीने॥
मनसंशय कीने हनुमाना। सतगुरु कृपा लह्यौ दृढ़ ज्ञाना॥
गरुड़जो परम प्रेमते ध्याये। परम हंसकी पदवी पाये॥
यहि बिधि केते जीव चेताई। तब मुनींद्र निज लोक सिधाई॥
पहुँचे हंस पुरुष दरबारा। दरसपाय दुख हंस बिदारा॥
कछुकादिवसजबयहिबिधि बीते। त्रेता गत द्वापर तब थीते॥

इति त्रेतायुगवृत्तान्त।

अथ द्वापर युगमें मुनींद्रजीको पृथ्वीमें आगमन कथा और करुणा-मय स्वामी नामधारन और जक्तजीव तारन—चौपाई।

पुरुष अवाज भई तेहि वारा। ज्ञानी बेगि जाहु संसारा॥
परम पुरुष कह शीस नवाई। महिं मंडल मुनींद्र चलि आई॥
जो प्रभु आहि नाम अरु नामी। द्वापर कह करुनामय स्वामी॥
प्रथमहि जब भूलोक सिधारे। गढ गिरनार तहां पगधारे॥
चंद्रबिजय नृप नाम बखानी। गढ गिरनार तासु रज धानी॥
परम भक्ति मय ताकी रानी। इंद्र मती तेहि नाम बखानी॥
साधुसे परम प्रीति सो धारे। नित साधुनकी बाट निहारे॥
साधुको जहँ कहुँ आवत हेरे। नित्त आपने ढिग सो टेरे॥
परम प्रीतिसे सेवा धारे। तन मन धन साधुन पर वारे॥
तासु प्रीतिकी रीति बिचारी। करुनामय स्वामी पग धारी॥
जात चले तेहि मारग माही। रानीको मंदिर रह जाही॥
देखे रानी चढ़ी अटारी। साधु जानि हरषित भइभारी॥
त्वरित पठायौ तहँ निज चेरी। बेगि साधुको आनहु टेरी॥
वृषली चलि हम कह शिरनावा। रानीको संदेश सुनावा॥

महाराज दाया चित भीजै। भूपति भौन गौन अब कीजै॥
करुना मय स्वामी कह ताही। हम नहिं भूपतिके गृह जाही॥
राज काज है मान बड़ाई। हमैं साधुना नृप घरजाई॥
पुनि वृषली रानी ढिग आवो। साधु न आवै मोर बोलावो॥
यह सुनि इंद्रमती उठि धाई। करुनामयके पद शिरनाई॥
मोपर दाया कीजै नाथा। मो ग्रह चलिये करो सनाथा॥
रानीकी लखि प्रीति अपारा। करुनामय तिहि भौन सिधारा॥
ताके भौन जबहि पग दीनो। चरण धोय चरनोदक लीनो॥
रानी चरनामृत करियाना। बहुत भांति कीने सनमाना॥
कीनसेव भल हिय हर्षाई। पीछे ज्ञान सुननको आई॥
सुनि गुरुज्ञान प्रीति अति बाढ़ी। चरनन लागि प्रेममें गाढी॥
नाथ मोहि गुरुदिक्षा दीजै। अपनी शरन माह अब लीजै॥
रानीको गुरुदीक्षा दीना। राज चंद्रविजय नहिं लीना॥
रानीको निज लोक पठाया। सो सतगुरसे बिनय सुनाया॥
हे प्रभु नृपको करो उबारा। यद्यपि वह नहिं शिष्य तुमारा॥
भावभक्ति रानीके काजा। सतगुरु कृपा तरो सो राजा॥
यहिबिधिजिनाजिनगृहगुरुज्ञाना। सो सब सत्यलोक कर थाना॥
हंसनको सतिलोक लेजाई। तहां आप कछु काल बिताई॥

इति द्वापर युग।

अथ कलियुगमें करुनामय स्वामीको पृथ्वीमें आगमन कथा और सत्य कबीर और सैयदअहमद कबीरशेख कबीर नामधारण और जग जीव तारण—चौपाई।

द्वापर जगको अंत जो आया। पुरुष बचन तब टेरि सुनाया॥
ज्ञानी बेगि जाहु मर्त्य लोका। नाशकरो जीवनको शोका॥
सत्य पुरुषको करो प्रणामा। तब ज्ञानी पहुँचे नर धामा॥

प्रथमहि मृत्युलोक जब आये । कलियुग नाम कबीर कहाये ॥
हिंदू मुसलमान गुरुपीरा । मिश्रित नाम कहाव कबीरा ॥
प्रथमहि प्रकट भये चलिकाशी । तहां आपनो ज्ञान प्रकाशी ॥
नग्रमें जबहि धरे निज पाई । श्वपचसुदर्शन तहां रहाई ॥
ताने सतगुरुको पहिचाना । चरनन लागि गह्यौ दृढ़ ज्ञाना॥
जब सतगुरुकी दीक्षा पाई । करे भक्ति सो मन चितलाई ॥
श्वपच करे भक्ति मन लाई । मात पिता देखै हर्षाई ॥
भक्ति पुत्र लखि हरर्षित होई । सतगुरु दीक्षा लियौ न दोई ॥
ताहि काल कृष्ण औतारा । अरु कौरौ पाँडव तन धारा ॥
सत्य कबीर कृष्णसंवादा । ज्ञानगुष्टि तहँ बहु कथि बादा ॥
कृष्णहि बहु बिधि ज्ञान दृढाई । क्षर अक्षरके पार लखाई ॥
सत्य कबीर ज्ञान गंभीरा । कथे सकल सुर नर मुनितीरा ॥
ताही समय युधिष्ठिर राजा । तानै कीन यज्ञको साजा ॥
बंधु मारि अपकीरति कीना । ताते यज्ञ रचन चित दीना ॥
कृष्णकेरि जब आज्ञा पाई । तब पांडौ सब साज मंगाई ॥
यज्ञ कि सामिग्री गहि सारी । जहँ तहँ ते सब साधुहंकारी ॥
पांडौ प्रति बोले यदुपाला । पूरन यज्ञ जान तिहि काला ॥
घंट अकास बजत सुनि आवो । यज्ञको तब पूरन फल पावो ॥
जुरे तहाँ कोटिन ऋषि राजा । साधू ब्राह्मण सहित समाजा॥
भोजन बिबिधि प्रकार बनाई । परमप्रीतिसे सबहि जेंवाई ॥
भोजन कीन सकल ऋषि राई । बजा न घंट भूप भ्रम आई ॥
पांडौ तबहि कृष्ण पह गयऊ । मनसंशय करि पूछत भयऊ ॥
करिके कृपा कहो यदुराजा । कारन कौन घंट नहिं बाजा ॥
सो असकारण तासु बताई । साधू नहिं कोइ भोजन पाई ॥
चक्रत है तब पांडौ कहेऊ । कोटिन साधू भोजन लहेऊ ॥

अब कह साधु पाईये नाथा । तब तिनते बोले यदुनाथा ॥
श्वपच सुदर्शन को ले आवो । आदर मान समेत जेंवावो ॥
सोई साधु और नाहिं कोई । पूरन यज्ञ जाहिते होई ॥
कृष्ण की जब अस आज्ञा पाई । तब पांडौ ताके ढिग जाई ॥
श्वपच सुदर्शनको ले आई । विनय प्रीतिसे ताहि जेंवाई ॥
भूप भौन भोजन कर जबही । बजा अकाशमें घंटा तबही ॥
काल कछुक जब गयौ सिराई । तब देहांत श्वपचको आई ॥
तन तजके तव सो चलि जाई । सतगुरुतिहि निजलोक पठाई॥
ताही समय कृष्ण तज देही । बोध रूप धारयो तव येही ॥
नाम जो इंद्रदौन तेहि काला । देश उडैसेको महिपाला ॥
तन ताजि कृष्ण तहां चलिजाई । इंद्रदौन कह स्वप्न देखाई ॥
स्वप्नमें अस हरि ताहि बताई । मेरो मंदिर देहु उठाई ॥
भूपतिसे जब ऐसे कहेऊ । सो मंदिरकी रचना गहेऊ ॥
रामचंद्र गहि निज दल भीरा । गये जबहिं बारिधके तीरा ॥
बांध्यौ सेत बंध बरियाई । तेहि कारन सागर दुख पाई ॥
जो बलवान अबल दुख देई । बदला अवश्य भरेंगे तेई ॥
नीति निरञ्जनकी यह जाना । स्वसमवेदमें प्रथम बखाना ॥
बदला पूर्व लेन तिहि बारा । छोभित सिंधु उठा खरधारा ॥
जब रचि मंदिर लाग उठावा । क्रोधवंत सागर तब धावा ॥
छनमें धाय सकल सों बोरे । जगन्नाथको मंदिर तोरे ॥
हारा नृप करि जतन उपाई । हरि मंदिर तहँ उठै न पाई ॥

सत्यकबीर वचन—चौपाई ।

मंदिरकी यह दशाविचारी । बर पूरब मनमाह संभारी ॥
तब हम चले उड़ैसे माही । इंद्रदौन भूपति के पाही ॥
मंदिर षट परकार बनाई । उदधि नीर तेहि लीन बुडाई ॥

पीछे उदधि तीर हम जाई । जायके चौरा तहाँ बनाई ॥
इंद्रदौन कह बचन सुनावो । अहो राव तुम काम लगावो ॥
मंडप शंक न राखो राजा । इहवा हम आये यहि काजा ॥
जाहुवेगि जनि लावहु वारा । निश्चय मानो वचन हमारा ॥
राजा मंडप काम लगाई । मंडप देखि उदधि तब धाई ॥
सायर लहरि उठै बिक रारा । आवै लहरि क्रोध चित धारा ॥
उदधि उमंग क्रोध अति आई । लहरि आनि चौरा नियराई ॥
दरस हमार उदधि तब पाई । अतिभय मान रहा ठहराई ॥

समुद्र वचन ।

छन्द–रूप धारयो विप्रको तब उदधि हमपै आइया ।
चरन गहिके माथ नावो मरम हम नहिंपाइया ॥
जगन्नाथके भोर स्वामी ताने हम इत आइया ।
अपराध मेरो क्षमाकीजै मरम अब हम पाइया ॥
सोरठा–तुम प्रभु दीन दयाल,रघुपति ओल दिवाइये ।
बचन करो प्रतिपाल,कर जोरे बिनती करों ॥

चौपाई ।

कीनो गौन लंक रघुवीरा । उदधि बांधि उतरे रन धीरा ॥
जो कोइ करे जोर वरियाई । अलखरूपतिहि ओलदिवाई ॥
मोपर दया करो तुम स्वामी । लेव ओल उर अंतर्यामी ॥

कबीर वचन–चौपाई ।

ओल तुमार उदधि हम चीन्हा । बोरे नग्र द्वारिका दीना ॥

उदधि वचन ।

यह सुनि उदधि धरयौ तब पाई । चरन टेकि तब चल हरषाई ॥
उदधि लहरि उमंगी तब धाई । बोरयौ नग्र द्वारिका जाई ॥
मंदिर काम पूर तब भयऊ । हरिको थापन तहँवा कियऊ ॥

कृष्ण वचन-चौपाई ।

तब पंडन हरि स्वप्न न जायो । सत्य कबीर मोहिपै आयो ॥

आसन सागर तीर बनाई । दरस कबीर उदधि उठि जाई ॥
यहि विधि मंदिर मोर थपाई । कलियुगमें एक धाम बसाई॥

पंडा वचन–चौपाई ।

पंडा उदधि तीर तब जाई । करि असनान मंडपहि जाई ॥
पंडा मन अस पाखण्ड लाई । प्रथमहि दरस मलेक्ष देखाई ॥
हरिको दरसन हम नहिं पाई । पहिले हम चौरा गनि आई ॥
तब हम कौतुक एक बनाई । पूजन मंडप पंडा जाई ॥
तहँवा एक चरित्र रहाई । लखि पंडा चकृत ह्वै जाई ॥
जह लगि मूरत मंदिर माही । भये कबीर रूप धरि ताही ॥
हरि मूरत कह पंडा देखा । भये कबीर रूप धरि भेषा ॥
अछत पुष्पले विप्र भुलाई । नहिं ठाकुरको पूजन पाई ॥
देखि चरित्र विप्र शिर नावा । हम स्वामी तुम मर्म न पावा ॥
तुम कह देखि हीन मन लाई । ताते मोहि चरित्र देखाई ॥
छमा अपराध करो प्रभु मोरे । बिनती करो दोउ करजोरे ॥

छन्द–वचन एकमें कह्यो ताते विप्र सुनते कानदे ।
पूज ठाकुर दीन आय सद्गुविधा मनकी छाड़दे ॥
भ्रांति भोजन करे जो जिव आगहीनो तासुको ।
करे भोजन छूति राखे शीश उलटै जासुको ॥

चौपाई ।

पंडौ मनमें मान्यौ हीना । ताते यह चरित्र गुरु कीना ॥
जगन्नाथकी छूति उठाई । बर्न बिबेक न तहाँ रहाई ॥
सबहि जाति हरि भोग लगावै । यकठे बैठके भोजन पावै ॥
कछु नहिं छूति रहा तिहि ठामा। सर्वजाति यक मय हरिधामा॥
आचारिनि बहु कीन विचारा । जगन्नाथमें चलै अचारा ॥
तिनको तहं आचार न चाले । सत्य कबीर वचनको टाले ॥

इमि गुरु हरि मन्दिर थपवाई । पूरब कथा बहुरि अब आई ॥
श्वपच सुदर्शन तन तजि गैऊ । लोकजाय गुरु बिनतीकियऊ॥
हे सतगुरु अस दाया कीजै । मेरे मातु पिता गति दीजै ॥
श्वपचके मातु पिता जो रहेऊ । पूर्वदेह गुरु ज्ञान न कहेऊ ॥
ताते बहुरि देह सो धारी । द्विजकुलमें प्रकटे नर नारी ॥
पुत्रकि भक्ति प्रतापते सोई । श्वपच देह तजिके द्विजहोई ॥
कुलपति नाम पिताको रहेऊ । श्रीया नाम माताको कहेऊ ॥
चन्दबार तेहि नग्रको नाऊ । नारी पुरुष बसै तेहि ठाऊ ॥
जब दोनों द्विज कुल तन पाई । नरहरि लछमना नाम धराई ॥
जगन्नाथ के योग पगधारे । सत्य कबीर चले चँदवारे ॥
दोऊ जीव तारनके काजा । चंदवार गुरु आनि विराजा ॥

सत्य कबीर वचन–चौपाई ।

जगन्नाथसे जब पग धारे । तबहि आनि पहुँचे चंदवारे ॥
बालक रूप धरयौ तिहि ठामा । कीनेहु ताल माह विश्रामा ॥
कमल पत्र पर आसन लाई । आठ पहर हम तहाँ रहाई ॥
नरहरि नारि लछमना जोई । तालके ऊपर पहुँची सोई ॥
पुत्र हेत सों आस लगाई । करि असनान बिनय रविराई॥
अञ्चल ले बिनवै करजोरी । सुंदर पुत्रहेत चित दौरी ॥
तत छन हम अंचल पर आवा । हम कह देखि नारि हरषावा॥
बालरूप ह्वै भेट्यो ओही । विप्र नारि यह ले गई मोही॥
बहुत द्यौस तिहि संग रहाऊ । नारि पुरुष मिलि सेवालाऊ॥
जब हम उठै पलंग झटकोरा । स्वरन मिलै तिन्हें यकतोरा ॥
तिनके हृदय न शब्द समाई । बालक जानि प्रतीत न आई॥
ताहिदेह नाहिं चीन्हों मोही । भयो गुप्त तबही तन ओही ॥
नरतिय जब दोनो तन त्यागे । जन्मलीन जो लहा ह्वै जागे

नीरूनीमा जोलह जोलाही। काशी नग्र बसै दोउ ताही ॥
ताही नग्र कबीर तलाई।कमल पुष्प तामें रह छाई ॥
बालक रूप तहाँ हम लीने। कमल पुष्प पर आसनकीने॥
तहँ बारह बालक पौढ़ाऊ। करे कुतूहल बाल सुभाऊँ ॥
तिहि औसरमें नीरू जोलाहा। नारि गौन संग ल्यावै ताहा ॥
तृषावंत जब भै सो नारी। तालपै जल अँचवन पगधारी
नीमा दृष्टि बालपर परेऊ। देखत दरश मोद मन भरेऊ ॥
जिमि रवि दरश पद्म विकशाना। धायधरचौ धन रंक समाना॥
तब सो बालक लियौ उठाई। ले बालक नीरू पह आई ॥
क्रोधवन्त जो लहा तब भैऊ। नीमासे तब ऐसे कहेऊ ॥
काको बालक तैं लैआई। नग्रमें मेरी होय हँसाई ॥
नग्रके लोग हँसे गे मोही। गौनाहिंतियबालक संगजोही॥
जोलहा रोष कीन तिहि बारी। बेगि देहु तुम बालक डारी ॥
हर्ष गुना बनि नारी लाई। तब हम तासे बचन सुनाई ॥

बाल वचन।

छन्द–सुनहु बचन हमार नीमा तोहि कहो समुझायके।
पिछली प्रीतिके कारने तोहि दरस दीनो आयके ॥
आपने गृह लैचलो मोहि चीन्हिके जौं गुरु करो।
देहु नाम दृढाय तुमको फंद यमके नाहिं परो ॥
सोरठा–सुनत बचन अस नारि,नीरू त्रास न राखेऊ।
लेगई नग्र मझार, काशी नगर पहूँचेऊ ॥

चौपाई।

लेबालक जब घरको गैऊ। नग्र लोग सब देखत भैऊ ॥
नग्रनारि नर हाँसी लाई। नारिगौन संग बालक ल्याई ॥
जोलहासुनि सुनि लाजितहोई। बाल वृत्तांत कहै सब सोई ॥

यह बालक तलावमें पाई । नीमा देखि ताहिले आई ॥
कमलपुष्प शिश सेज बनाई । हरषितनारि सो लियौ उठाई ॥
जोलहा यद्यपि कथा प्रकाशी । तऊ लोग सब करते हाँसी ॥
बहुत द्यौस तिहि भौन रहाऊ । जोलहा जाने बालक भाऊ ॥
बालक रूप तासु ग्रह रहते । खानपानतह नहिं कछु गहते ॥
बिन भोजन तन छबि सरसाई । दिन दिन देह कि दीरघताई ॥
जोलहा पुनि पंडितन बोलाये । बालक नाम धरनको आये ॥
पंडित करन जो लगे बिचारा । तबशिशुनिजमुखबचनउचारा
नाम कबीर हमारा अहई । और नाम जनि पंडित कहई ॥
यह सुनिके सब चकृत भैऊ । शिश निजुनाम आपतेकहेऊ ॥
कोइ कहै यह दोनौ देवा । कोई कहै यह अलख अभेवा ॥
कोई ईश्वर अंश बतावा । कोई कहआप देह धरि आवा ॥
पंडित निज निज भौन सिधारा । बिन भोजन बीते बहु वारा ॥
जोलहा तब मनमें दुखपाई । भोजन करो कबीर गोसांई ॥
जोलजोलाही दुःखितानिहारी । तब हम तिनते बचन उचारी ॥
कोरी यक बछिया लेआवो । कोरा भांडा एक मँगावो ॥
ततछनसो जोलहा चलि जाई । गऊ कि बछिया कोरी ल्याई ॥
कोरा भांडा एक गहाई । भांडा बछिया शीघ्रहि आई ॥
दोऊ कबीर के सम्मुख आना । बछिया दिशादृष्टिनिज ताना ॥
बछिया हेठ सो भांडा धरेऊ । ताके छनहि दूधते भरेऊ ॥
दूध हमारे आगे धरही । यहिबिधिखान पाननितकरही ॥
तबसो जोलहा डरै बहूता । हमरे घर है अचरज पूता ॥
केते दिन यहि विधि बालिगैऊ । संग बालकन खेलत भैऊ ॥
कथै बालकन प्रति बिज्ञाना । सो जड़वतनाहिं कछु पहिचाना ।
तब साधुन संग गोष्टि कराही । अगमज्ञान कथ तिनके पाही ॥

सुनि साधुन मन अचरज होई । यहतो सिद्ध पुरुष है कोई ॥
सब जोलहा मिलके यकवारा । नीरू ते अस बचन उचारा ॥
बालककी सुन्नत करवावो । तिहि कारन सबसाज मँगावो॥
ताहि काल अस कथा कहाई । नाई सुन्नतको बोलवाई ॥
तब नाई कबीर ढिग आया । ले अस्तुरानिकट नियराया ॥
पांच इंद्री ताको दिखलावो । काटि लेहु जो तोहि मनभावो॥
यह लखि भभरिके नाई भागा । सुन्नत नहीं कीन डरलागा ॥
पुनिजोलहनअसकौतुक कीना । तब बोलाय काजी को लीना॥
एक गाय तिहि काल मँगाई । काजी ताको जबह कराई ॥
जिहि औसरअस कौतुक ठाना । सत्यकबीर मरम सब जाना ॥
खेलत रहे बालकन माही । तेहि छन धायके पहुँचे ताही
गऊ घात जब देखत भैऊ । दया धारि काजीते कहेऊ ॥
बहुबिधि काजीको समुझाई । महापाप जिव घात बताई ॥
काजी लज्जित ह्वै शिर नायौ । बिनती करै न उत्तर आयौ ॥
तबहि कबीर गऊ ढिग जाई । मरी गाय तिहि काल जिवाई ॥
तब जोलहा गृह तजे कबीरा । अब नहिं रहो तुमारे तीरा ॥
बिकल भये तब नीमा नीरू । नग्र चहूँ दिश बालक हेरू ॥
ढूँढत सुतन लह्यौ नर नारी । रुदन बिलाप करै दोउ भारी ॥
विकल बिलोक दया उर आई । तब कबीर तेहि दियौ देखाई॥
नीरू नीमा बिनती करही । प्रभु हमरे गृह पुनि पग धरही॥
तब हम तिनते बचन उचारी । ऐसो पाप कीन तुम भारी ॥
तब जोलहा बोलै शिर नाई । नाहिं यह पाप मेरी समताई ॥
मिल जोलहन कीनी बरियाई । ताकी खबर न मैं कछु पाई ॥
तापर कृपा बहुरिकै कीना । पुनि ताके गृहमें पग दीना ॥
बाल चरित्र है विविधिविधाना । सो संकेत न होय बखाना ॥

जहाँ तहाँ बहु विप्र सिधारा। सत्यकबीर केर भंडारा॥
निवता दियौ चहूँ देश जाई। साधुनकी जमाति चलिआई॥
भीर भई साधुनकी भारी। गृह तजि सत्यकबीर सिधारी॥
आयके विष्णुभये भंडारी। साधुनको आदर कर भारी॥
पोषन भरना विष्णुको कर्मा। आयके गहि लीनो निजधर्मा॥
सत्यकबीर कर्मते न्यारा। मायाको सब खेल पसारा॥
माया सदा जासुकी दासी। सकै कौन करि ताकी हाँसी॥
सब साधुनको हरि सनमाने। विप्र सकल देखत खिसयाने॥
मर्म न कोई लख्यो तिहि बारा। धन्य कबीर धन्य भंडारा॥

दोहा—काशी कुटी कबीरपर, भई साधुनकी भीर।
जो कछु किया सो हरि किया, होय कबीर कबीर॥

चौपाई।

आदर भोजन दक्षिणा पाई। धन्य २ कहि साधु सिधाई॥
काजी पंडित करे विचारा। जाय कबीर कौन विधिमारा॥
काशीमें तेहि काल बताई। शाह शिकन्दर पहुँचा आई॥

इति।

ग्रंथनिरंभयज्ञान—सत्यकबीर वचन।

साखी—कलिमहँ काशी प्रकट्यौ, सुनो संत धर्मदास।
सत्य पंथ प्रचारेऊ, निंदक भयो उदास॥
शाह सिकंदरके तन, भयो ज्वाल उतपान।
दुःखव्याकुल अति विकलतन, काशी पहुँचा आन॥

चौपाई।

पूछै शाह ऐसा कोइ भाई। जाते मेरो कष्ट दुराई॥

साखी—काजी पंडित मिलिके, कहा शाहसे जाय।
है कबीर दरवेश यक, ताको लेहु बुलाय॥

चौपाई ।

कहैं शाह तेहि तुरत लेआवो । साइत एक विलंब न लावो ॥

साखी–आये धायके लोग बहु, आतुर बोलै बैन ।
चलो कबीरा शाहपै, हम आये तोहि लैन ॥

चौपाई ।

गये शाहके सन्मुख जबही । ज्वाला देह दूर भयो तबही ॥
उठिके शाह भयो तब ठाढा । मोहिते अधिक प्रेम तब बाढा॥

साखी–शाहन छोडे हम कहब, बढ्यौ प्रेम मन माह ।
शेख तकी तेहि पीर थे,सो मुरझे मन माह ॥

चौपाई ।

कहैं तकी सुन शाह सिकंदर । हमते कियो तफाउत अंतर ॥
जोलहाते तुम कीनेहु यारी । हमते अंतर कियौ बिगारी ॥
कह सिकंदर तुम हमरे पीरा । वह दर्द मंद दरवेश फकीरा ॥
कहैं मारफत राहकी बाते । राखा जान जौ मेरा जाते ॥
ऐसे शाह कह्यो समुझाई । तबहु न शेख तकी शरमाई ॥
काशीके पंडित अरु काजी ।शेख तकी मिलि परपंचसाजी॥
कहैं काजी सुन शाहके पीरा । कैसेहु मारा जाय कबीरा ॥
यह जोलहा जौं मारा जाई । तो हम सबकी टरै बलाई ॥
कहैं तकी सुन पंडित काजी । क्या कबीर जोलहाहै पाजी ॥
चाहो तो आतशमें जारो । चाहो टूक टूक करि डारो ॥
चाहो जलके बीच डुबाओ । चाहो देगमें आँच दिलावो ॥
चाहो हाथीसे चिरवावो । चाहो खाक त्वचा भरवावो ॥
चाहो तो देवालमें साटो । चाहो बोटी बोटी काटो ॥
चाहो मोहडे तोप उडावो । चाहो कूपमें जिअत दबावो ॥

साखी–मेरा नाम शेख तकी, मैं सिकंदरको पीर ।
देखो कैसे बाचिहै, कैसा फकर कबीर ॥

चौपाई।

काजी पंडित सब हरषाना। जिमि पंकज विकशे लखि भाना॥
कहैं काजी तुमते सब होई। तुम ऐसा दूजा नहिं कोई॥
इस जोलहेने कुफुर मचाया। दोनों दीनकी अदल मिटाया॥

साखी–तीरथ व्रत एकादशी, रोजा और नमाज।
ये सब कछु न मानई, कहै एक शिरताज॥
खसी वो मुरगी गायनी, पीर निमित हमदेह।
सबको कहै कसाइ, ऐसा काफिर येह॥

चौपाई।

काशीके लोग हमैं नहिं मानै। जोलहाकी सब सिफत बखाने॥

साखी–भाग हमारे शेखजी, तुम इहाँ पहुंचे आय।
जौंयह जोलहा मारहू, तो सबको कंटक जाय॥
कहै तकी सुन काजी, हमते बाढी रार।
जीअत कबहु छोडो, अब यह डारो मार॥
शेख तकी परपंच करि, गये शाहके पाह।
हमें देख तह बैठे, अधिक जरे मन माह॥
कहै तकीचित रोष धरि, सुनो सिकन्दर बात।
कहा हमारा नामहू, तब होवै कुशलात॥

सोरठा–यह जोलहा तूमार, नहीं तो देवगा बदहुआ।
तुमको करों खुवार, जान माल सब गलैगा॥

साखी–कहै सिकंदर पीर, सुन मोहि तुमारि पनाह।
जो चाहो सो करो यह, तुमें कोई रोकै नाह॥

चौपाई।

कहो कबीरके मारन ताँई। इहवां मेरी कछु न बसाई॥
पीर फकीर जात अल्लाहा। मेरो जोरन पहुँचै ताहा॥

साखी-जौं वह होते रैअत, तौ हम करते जोर ।
वह अलमस्त फकीर है, तहाँ न फावै मोर ॥
तुमहु कही समुझायके, पीर फकीर अल्लाह ।
अब तुम कहते मारने,यह न होय हम पाह ॥

चौपाई ।

अहो पीरजी तुम वह एका । अपने मनमें करो विवेका ॥
उन तुमरो कछु नाहिं बिगारा । काहे तुमने कुफुर पसारा ॥
बुजरुग सबने की फरमावै । जोर जुलुम कछु नाहीं भावै ॥

साखी--कहा हमारा मानिये, छोडि दीजिये रार ।
कुलह सुलह दे बैठिये, अल्लह और निहार ॥
कहै तकी सुलतानसुन, तुमे नहीं कछु दोष ।
जो मैं कहो सो मानिये, कर मेरो संतोष ॥
कहै सिकंदर पीर सुन, मेरो शिर बरुलेहु ।
फकर कबीर न मारिये, यहमांगे मोहिदेहु ॥

चौपाई ।

सुनतहि तकी क्रोध पर जारा । शिरते ताज जमीन देमारा ॥
निपटहि बिकलदेखितिहिभाई । तब हम शाहसे कहा बुझाई ॥
कहै कबीर सुनो सुलताना । करो पीरको बचन प्रमाना ॥
कहै सिकंदर सुनो हो पीरा । मन मानै सो करो कबीरा ॥

साखी-डारहु मारि कबीरको, हम नहिं मानै ऊन ।
ताका कबहु न भलाहो, करे फकरको खून ॥

चौपाई ।

शेख तकी तब उठे रिसाई । है कोई बांध कबीरहि भाई ॥

साखी-शेख तकी आपै उठै, काजी पंडित झार ।
बाँध बाँध सबकोइ कहै,कोई न करेगोहार ॥

बाह बांधि पग बांधिके, बोर गंगजल नीर।
निःसंशय निश्चितसो, निरभयसदाकबीर॥
गंगाजलपर आसन, बंद परे खहराय।
जन कबीरसतनाम बल,निरभय मंगलगाय॥
शाह सिकंदर देखही, अरु ठाढे सबलोग।
धन्य कबीरसब कोइकहै,शेख तकी भासोग॥

चौपाई।

शेख तकी तब मीजै हाथा। सूखे मुख नाहिं आवै बाता॥
शेख तकी तब कहै बनाई। अबकी कसनी बदौ न भाई॥
अबकी बार कबीरहि पावो। देगि मूंदिके आंच दिलावो॥
देग आंचते बचै कबीरा। तौ जानो अल्लाहके नूरा॥
कहै कबीर नाम परकाशा। तासो गयौ सिकन्दरके पासा॥
शाह सिकन्दर उठिभे ठाढे। अधिको प्रेम तासु उर बाढै॥
शेख तकी कह क्रोधितबैना। धुनै शीस राते भये बैना॥
सुन कबीर कह तकी मयाना। तुम कीनो चेटक हम जाना॥

साखी--अबहि तोहि कीमा करे, देगमूंदि देव आँच।
देव आँचदे बाँचिहो, तो कबीर तुम साँच॥
कहै कबीर सुन शेख नकि, करो जो तुम मनभाव।
हम जैसीको तैसा, देग आँच दिलवाव॥

चौपाई।

तुम नाटक चेटक मनलावा। हमरे चेटक नाम प्रभावा॥
शेख तकी तुम आप हो जैसो। हमको तुम मति जानो तैसो॥

साखी--कीमा करने कारने, शेख घालो तरवार।
खांड़ा गहि शिर ना कटै, शेख तकी गेहार॥
कहै तकी इन जो लहा, बांध्यौ खांड़ा मोर।

तातें देही ना कटै, लगै अन्न हो भोर ॥
देग मुसल्लम मूँदेहू, मोहड़ा मूँद रिसाय ।
आप आँच दिलवावई, ठाढ़ कतहुँ नहिं जाय ॥

चौपाई ।

देख लोग सब बहुत तमाशा । हम पुनि गये सिकन्दरपासा ॥
साखी—शाह सिकन्दर पीरपै, खबरि पठाई साँच ।
है कबीर पास हमारे, काहि दिलावो आँच ॥

चौपाई ।

सो सुनि तकी देग मुख खोला । सुन्न देखि वाको मन डोला ॥
आतुर तकी शाहपै आये । हमै देखि पुनि शीश डोलाये
बहुरि तकी लज्जित ह्वै कहई । जोलहापै कछु चेटक अहई ॥
साखी—देग अन्न जल बांचेऊ, नाहिं व्यापै तन पीर ।
बहुरि अग्नि जरि बाचि हौं, तो तुम साँच कबीर ॥

चौपाई ।

विहसि कबीर कहै सुन शेखा । करो जो आवै तुमरे विवेका ॥
शेख तकी बहु काठ मँगाया । अति विस्तार अंबार लगाया ॥
साखी—ताहि बीच मोहि मूँदके, दीन्हेसि अग्नि लगाय ।
अग्नीधाय बुतानी, जन कबीर गुनगाय ॥

चौपाई ।

कहैं तकी इन बांध्यौ आगी । याको चेटक सब पर लागी ॥
तब जानो तुम सांच फकीरा । धरती गाड़े बचो कबीरा ॥
कहैं कबीर सत्य नाम प्रतापा । कतहू नाहिं व्यापै तनतापा ॥
साखी—तुम मति चूको शेख जी, करों जो तुम मन होय ॥
कहैं कबीर मोहि डर नहीं, निर्भय नाम समोय ॥

चौपाई ।

शेख तकी पुनि कूप खुनाये । मरपग बांधि ताहिमें नाये ॥

साखी–ईंटा पाथरते भरे, दीनों कूप मुँदाय।
कहै तकी अबकी मरे, ऐसो करे खुदाय॥

चौपाई।

शेख तकी मन अल्लह मनावै। अबकी वार न जीअत आवै॥
हम पुनि गये शाहके पासा। तवहि सिकन्दर वचन प्रकाशा

साखी–कहैं सिकन्दर पीर सुन, किसको गाड़ो कूप।
सो कवीर इहां बैठे हैं, अद्भुत ख्याल अनूप॥

चौपाई।

शेख तकी ब्याकुल है बोले। नैन नासिका मस्तक डोले॥

साखी–यहि जोलहाके पासमें, तारो गुटका आहि।
ताते गाड़े ना मड़े, जरै न काटा जाय॥
अब गहि कर पग बांधिके, हाथी देवहुलाय।
हाथी धरि धरि चीरहैं, तव कछु नाहिं बसाय॥
खूनी पील मँगायकै, दीन्हेसि मद्य पिलाय।
करपग बँधि हाथी हुले, हाथी चला पराय॥
केतनो करै महाउत, गज सम्मुख नाहिं आव।
कहै तकी अब तोपके, मोह डेराखि उड़ाव।
गोला दारू भरि दिहासि, राखे मोहडे तोप॥
कहैं कबीर सतनाम बल, निर्भय रह्यौ निशोक॥
चले सिकन्दर निजघरे, हम कह लीने साथ।
शेखतकी झूसी रहे, शाह इलाहा बास॥

चौपाई।

काशीके ब्रह्मन अरु काजी। मुरछि रही सब हिरफत बाजी॥

साखी–एक द्यौस गंगा तटै, बैठ सिकंदर शाह।
शेख तकी हमहू तहां, मुरदा यक बहा जाय॥

चौपाई ।

कहै तकी सुन फकर कबीरा । मुरदा फेर जिलावहु धीरा ॥

साखी–कहै कबीर गरीब हम, तुम बादशाहके पीर ।
मुरदा तुमहि जिलावहू, सतगुरु कहै कबीर ॥

चौपाई ।

शेख तकी चितवै चितलाई । अल्लह मुरदा देहु जिलाई ॥

साखी–अल्लह पीर मनाइया, शेख तकी बहु बार ।
मुरदा जिंदा ना हुवा, बहिगो रेत मझार ॥

चौपाई ।

शेख तकी कह सुनो कबीरा । मुरदा तुमहि जिलावहु फेरा ॥

साखी–तब उठि मुरदहि चिताव, हम दूरते नेरे आय ।
कुदरत निर्भयनामके, मुरदा फेर जिलाय ॥
मुरदेको अस बोलेऊ, उठ कुदरत कम्माल ।
करकुबड़ी धर टेकिऊ, सजि जिव भया सो बाल ॥

चौपाई ।

सुत कमाल कहि उत्तर दीना । उठि कमाल तब अस्तुतिकीना ॥
गुरू सत जो कही कमाला । गुरु कबीर मोहि कीननिहाला ॥

साखी–कहै कमाल पुकारिके, गुरू सत्य कबीर ।
मुरदेसे जिंदा किया, गंधी गली शरीर ॥
शेख तकी मन मूर्छिके, कहै धन्य कबीर ।
तुम अल्लाह खुदाय हो, तुम मेरे गुरु पीर ॥
कहै कबीर सुन शेखजी, तुम औलिया किजत ।
रोजा निमाजकर बंदगी, बैठो नबी जमात ॥
जो अल्लह फरमाया, सो नहिं करता कोय ।
हलाल हराम चीन्है नहीं, कैसे मुसलिम होय ॥

साखी—जबतक दर्द पराई, दिलमें आव नाहिं।
कोट बंदगी खता है, परै सो दौजख माहिं॥
जैसा दिलहै आपना, तैसा सब का जान।
दर्द मंद अल्लह मिलै, कहै कबीर प्रमान॥
शाह सिकंदरतकी मिलि, ठाढ़ भये करजोर।
बकसो चूक कबीर तुम, जो कछु औगुन मोर॥

चौपाई।

कहै कबीर सुनो शाह प्यारे। तुम हमार कछु नाहिं बिगारे॥
तुमरे पीर जो कसनी लीना। खरा खोट हम सबही चीन्हा॥
हम नहिं देहि बददुवा काहू। जो मम अरि हमसेवत वाहू॥
हमरे मित्र दुष्ट कोइ नाहीं। सब हमरेमें हम सब माहीं॥
हम काहूको कहा सरापै। करै सो तैसो फल ले आपै॥

साखी—जैसो बीज कोइ बोइहै, तस फल चाखै आप।
कहैं कबीर सत कहत हो, मोहि पुण्य नहिं पाप॥
कहर कुफूर दिल दौजखी, मोम दिलमें हरफकीर।
निरभय नामसो समरथ, सतगुरु कहै कबीर।

चौपाई।

ऐसे कहि काशी चलि आये। धर्मदास तोहि सैन बुझाये॥

सत्यकबीर वचन—चौपाई।

रोग सोग बहु दुःख हटाये। केते परचाको देखलाये॥
मृत्तकको दीनो जिव दाना। सो कछु इहां न करौ बखाना॥
सोई प्रसंग बहुरि अब गाई। कलिमें जिमि प्रभु पंथ चलाई॥
सत्यकबीरके शिष्य सुजाना। चार गुरू जो कीन प्रमाना॥
तिनमें धर्मदास बड़ अंशा। वंश बयालिस जासु प्रशंसा॥

धर्मदास धरनीमें आये। करि प्रपंच तिहि काल भ्रमाये
धर्मदास सुकृत औतारा। भूल्यौ पुरुष नाम निज सारा॥
प्रतिमा पूजामें लपटाई। परमपुरुषकी सुधि बिसराई॥
तीरथव्रत आचार अपारा। कर्म उपाह्लाको ब्यौहारा॥

पुरुष वचन--चौपाई।

पुरुष अवाज उठी तिहि बारा। ज्ञानी वेगि जाहु संसारा॥
सुकृत भवसागर चलि जाई। काल जालते गये भुलाई॥
तिन कह जाय चेतावहु ज्ञानी। जाते वंश चलै रजधानी॥
वंश बयालिस अंश हमारा। सुकृत गृह लेहै अवतारा॥
ज्ञानी वेगि जाहु तुम अंशा। धर्मदास उर मेटहु शंसा॥

ज्ञानी वचन--चौपाई।

चले ज्ञानी तब शीस नवाई। धर्मदास हम तुम लगि आई॥
पुरुष अवाज कहा तुम पासा। चीन्हो शब्द गहो विश्वासा॥

धर्मदास वचन--चौपाई।

धन्य सतगुरु तुम मोहिं चेतावा। काल जालते मोहि बचावा॥
मैं किंकर तुम दासके दासा। लीन उबारि काटि यम फांसा॥
मेरे चित अति हर्ष समाना। तुम गुण मोहिं न जात बखाना॥
भागी जीव शब्द तुम माने। पूरण भागते तुम बर ठाने॥
मैं अघकर्मी कुटिल कठोरा। रह्यो अचेत भर्म चित भोरा॥
मोहि आय तुम लीन जगाई। धन्यभाग तुम दरशन पाई॥
कहिये मोहि जीवके मूला। रविके उदय कमलमन फूला॥
भवसागर कौनी विधि छूटै। यमबंधन कौनी विधि टूटै॥
करो भक्तिके योग कमावो। देवदानकै तीर्थ नहावो॥
करो यज्ञके इंद्री साधो। बाहर फिरो कि मनको बाँधो॥
करो अचार कि साधन साधो। वर्त करो कै हरि अवराधो॥

जो तुम कहो सोइ सो करऊं । वचन तुमार हृदयमें धरऊं ॥

सत्यकबीर वचन–चौपाई ।

सुन धर्मदास मैं सत्य बतावो । भवसागरको दुःख मिटावो ॥
सुन धर्मदास भक्ति पद ऊँचा । इन सीढी कोइ बिरला पहुँचा ॥
योगी योग साधना करई । भवसागर तेऊ महिं तरई ॥
दान देय सोई फल पावै । भवसागर भक्तैको आवै ॥
तीर्थ नहाये जो फल होई । सर्व मर्म समझावों तोही ॥
जन्म लेय सुंदर तन पावै । संपति दारि बहुरि जग आवै ॥
ऊँचे घर लेवै औतारा । ब्राह्मण क्षत्रीको व्यौहारा ॥
इंद्री साधनहै अति नीका । बिना भक्ति जावो सब फीका ॥
इंद्री साधनहै तप भारी । तामस तेज क्रोध हँकारी ॥
क्रोध किये गति मुक्ति न पावै । भक्ति महातम हाथ न आवै ॥
वर्त एक भक्तीको पूरा । और वर्त कीजै सब दूरा ॥
और वर्त सब यमकी फाँसी । भक्तिवर्त मिलै अविनाशी ॥
हरि अवराधनकी सुनि बाता । कहो भेद तुम सुनियो ज्ञाता ॥
हरिहर नाम सदा शिव केरा । ताते मिटै न भवको फेरा ॥
बहुत प्रेमते शिवको ध्यावै । रिद्ध अरु सिद्ध द्रव्यबहु पावै ॥
जो मन चित निश्चय करि धरई । गिर कैलासमें वासा करई ॥
फिरके काल झपेटै ताही । डारिदेय भवचक्कर माही ॥

साखी–शिव साधनकी यह गति, शिव हैं भवके रूप ।
बिन समझे यह जक्त सब, पर्यो महा भ्रमकूप ॥

चौपाई ।

हरिहर नाम विष्णुको भाषा । शुभ अरु अशुभ कर्मद्वै राखा ॥
इनमें करे कलोल सदाई । करे भोग जीवन भरमाई ॥
बहुत प्रीतिसे विष्णुहि ध्यावै । सो जिव विष्णुपुरीमें आवै ॥
विष्णुपुरी सो निरभय नाहीं । फिरकै डारि देइ भव माहिं ॥

साखी—हरिहर नाम जो विष्णुको, जाने किया जिव जेर।
चौरासी भर्मैं सदा, मिटै न भवको फेर ॥

चौपाई।

हरिहर ब्रह्माको है नाऊँ। रजगुण व्यापि रहा सब ठाऊँ ॥
ब्राह्मणको पूजै संसारा। सो जिव होय न भवके पारा ॥

साखी—यह तिनगुनकी भक्तिमें, मति भूलो धर्मदास।
इनके ऊपर निरगुन, तहँ योगीको बास ॥

चौपाई।

निर्गुण धाम निरञ्जन भाई। जिन सगरी उतपात्ति बनाई ॥
निर्गुणते मन भया प्रचण्डा। ताते बसै सकल ब्रह्मण्डा ॥
निर्गुण अंश सकल औतारा। पीर पयंबर सब तनधारा ॥
यही निरञ्जनकेर पसारा। तामें अटका सब संसारा ॥
धर्मदास तुम भक्त सनेही। इनमें जानि अटकावो देही ॥
भक्त अनेक भये जग माहीं। निरभय घर कोई पावत नाहीं
भक्ति करे तब भक्ति कहावै। भगसे रहित बचनको पावै ॥
चौदह लोक बसै भग माहीं। भगसे न्यारा कोई नाहीं ॥
सत्य नामकी खबरि न पाई। क्याकारि भक्ति करो रे भाई ॥
जगमें भक्त दोय मैं भारी। ध्रू प्रहलादसदा अधिकारी ॥
ये दोनों जन द्वै व्रत साधा। एकहि एक इष्ट आराधा ॥
ध्रुव तब ग्रह तजि बाहर गैऊ। नारदको उपदेशी भैऊ ॥
छठे मास प्रकटे हरि आई। राज दियो वैकुंठ पठाई ॥
साठि हजार वर्ष दियौ राजू। कुटुंवसाहित वैकुंठ विराजू ॥
एक द्यौस जब परलय आई। ताहि बासते देय गिराई ॥
दुतिय भक्त प्रहलाद कहाई। इंद्रासनको सुख जो पाई ॥
खबर दोन चौकरी भुक्ती। बन्धनभावते होय न मुक्ती ॥

साखी-इंद्रराजको भोगिके, फिर भवसागर माह ।
यह सर्गुनकी भक्ति है, निर्भय कबहूँ नाहिं ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

कौनि भांतिसे करिये भक्ती । सतगुरु मोहि बतावो युक्ती ॥
निर्गुण सद्गुण पार लखावो । तीसर न्यारा मोहि लखावो ॥

सत्य कबीर वचन-चौपाई ।

एक पुरुष है अगम अपारा । सब घट व्यापक सबसे न्यारा ॥
ताकी भक्ति करै जो कोई । ताको आवागवन न होई ॥
आदि ब्रह्म नहिं था ओंकारा । निर्गुन रूप नहीं विस्तारा ॥
नहि तब बीज नहीं अंकूरा । आदि भवानी चन्दन सूरा ॥
पुरुष कहो तो पुरुषो नाहीं । पुरुष भया मायाके माहीं ॥
शब्द कहौ तो शब्दो नाहीं । शब्द भया मायाके माहीं ॥
द्वै बिन होय न अधर अवाजा । कहो काहि यह काजअकाजा ॥
नाम कहो तो नाम न ताको । नामराय काल है जाको ॥
है अनाम अक्षरके माहीं । निहअक्षर कोइ जानत नाहीं ॥
धर्मदास तहँ बास हमारा । काल अकाल नपावै पारा ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास कह सुनो गोसाँई । इन बातन बनबेकी नाहीं ॥
संशय किये एकही ओरा । तुमही हते कि है कोइ ओरा ॥

सत्य कबीर वचन-चौपाई ।

जौ परतीत होय उर तोरा । भवको मेंटि संग रहु मोरा ॥
आदि पुरुष निहअक्षर जानो । देही धरि मैं प्रकट बखानो ॥
मोहि न व्यापो जगकी माया । कहन सुननको है यह काया ॥
देह नहीं अरु दरसै देही । रहौ सदा जहँ पुरुष विदेही ॥
गुप्त रहौ नाहीं लखि पाया । सो मैं जगमें आनि चेताया ॥

चारों युगमें चारों नाऊँ। माया रहित रहो सब ठाऊँ ॥
सबसे कह्यौ पुकारि पुकारी। कोई न मानै नर अरु नारी ॥
इनको दोष कछू नहिं भाई। धर्मराय राख्यौ बिलमाई ॥

धर्मदास वचन–चौपाई।

हे स्वामी मैं तुमको चीन्हा। आदि अंतको भेद सब लीना ॥
तुमही वार तुमहि हो पारा। तुमहीते उपजा संसारा ॥
समरथ सब गति पाई तोरी। अब सब संशय छूटी मोरी ॥
अब यहि भवमें बहुरिन आवो। तुमरे चरणकमल चितलावो ॥

सत्य कबीर बचन–चौपाई।

कहै कबीर सुनो धर्मदासा। सकल भेद मैं कीनप्रकाशा ॥
अब तुम भक्ति करो चितलाई। सेवो साधु तजि मान बडाई ॥
पहिले कुल मरजादा खोवै। भयते रहित भक्त तव होवै ॥
सेवा करो छोडि मत दूजा। गुरुकी सेवा गुरुको पूजा ॥
गुरुसे करे कपट चतुराई। सो हंसा भवभ्रमें आई ॥
ताते गुरुसे परदा नाहीं। परदा करें रहै भव माहीं ॥
गुरुहै मात पिता गुरु सेवा। गुरुसम और नहीं कोइ देवा ॥
गुरुसे अन्तर कबहु न करिये। सर्वसले गुरु आगे धरिये ॥

साखी–गुरुकी महिमा अगमहैं, शिव विरंच नहिंजान।
गुरु सतगुरुको चीन्हके, पावै पद निरबान ॥

धर्मदास वचन।

साखी–कर्म भर्म भव भार सब, दिया भारवें झोंक।
सतगुरुके परतापते, मिटगया सबही धोख ॥

इति।

अथ धर्मदासजीकी कथा–चौपाई।

धर्मदासकी कथा बखानो। वैश्यके कुल तनधरिप्रकटानो ॥
धर्मबइछव परम अचारी। जासु सुजस गावै संसारी ॥

धर्मदास गुरु चरन न परेऊ । तनमनधनतृणसमपरिहरेऊ ॥
छप्पनकोटिकि संपति सारी । दियौ लुटाय सो रंक भिखारी ॥
एकै पुत्र परम प्रिय जाही । तजत वार नहिं लायौ ताही ॥
नारि पुत्र तजि भये उदासी । धर्मधुरंधर गुनगन रासी ॥
तन मन गहे भक्तिसो गाढी । सतगुरुचरनप्रीति अतिबाढी ॥
परख्यौ ताको भक्ति प्रभावा । तब तेहि सतगुरुबचनसुनावा ॥
धर्मदास सुनिये मम बानी । तुमरे ग्रह प्रकटैगो आनी ॥
दशमें मास लेय औतारा । हंसन काज देह निज धारा ॥
सो जीवन को पार लंघावै । वंशकेर कंडिहार कहावै ॥
मेरे बचनते सो तनधारे । बचन चुरामनि नाम पुकारे ॥

धर्मदास वचन–चौपाई ।

हे प्रभु हम इंद्री बस कीना । कैसे अंश जन्मतौ लीना ॥
धर्मदास अस बचन सुनाई । तब सतगुरुतिहि कह्यौबुझाई ॥
पुरुष नाम धर्मन लिखि देहो । ताते अंश जन्म जो लेहो ॥
लखो सैनमें देहु लखाई । धर्मदास सुनिये चित लाई ॥
लिखो पान पूरुष सहि दाना । आमिन देहु पान परवाना ॥
धर्मदास आमिनिहि बोलाई । ले सतगुरुके चरन टिकाई ॥
धर्मदास परवाना दीना । आमिन पाय दंडवत कीना ॥
दशये मास जब पूजी आसा । प्रकटे अंश चुरामनि दासा ॥
सतगुरु बचन ते प्रकटे आई । बचन चुरामनि नाम कहाई ॥
मुक्तामनि पुनि नाम है ताका । जाते चली वंशकी साका ॥

इति ।

अथ चारोंगुरुकी कथा चौपाई ।

स्वसमवेद सतगुरुमुख बानी । चौदह कोट ज्ञानकी खानी ॥
त्वचा ज्ञान पुनि ताते काढा । चारो वेद कान तिहिं ठाढा ॥
ऋगयजुसाम अथवर्न चारो । ताते सब जग धर्म प्रचारो ॥

स्वसमवेदको चारो अंगा । ताते भये अनेक न ढंगा ॥
चारोवेद चहूं गुरु गहेऊ । परमपंथ जाते जिव लहिऊ ॥
चारो गुरुकी कथा बखानो । सुकृत आदि भेदग्रंथ परमानो ॥

इति ।

अथ प्रथमगुरु भवसागरमें उत्तर दिशा गोसांई धर्मदासजी—चौपाई ।

लोकमें सुकृत अंश कहाई । भवसागर धर्मदास गोसांई ॥
उत्तर दिशा तासु गुरुवाई । गहि ऋगवेद जो पंथ चलाई ॥
जम्बूदीपो भारथ खंडा । प्रकटै गढ़बानौ महि मंडा ॥
सो गह कोट ज्ञानकी बानी । पंथ प्रचार कीन रजधानी ॥
वंश बयालिस ताने पाया । भवसागरमें पंथ चलाया ॥

इति ।

अथ धर्मदासजीके बयालिस वंशके नाम ।

दोहा—बचन चुरामनि प्रथम कह, बहुरिसुदर्शन नाम ।
कुलपति नाम प्रमोद गुरु, कौल नाम गुणधाम ॥
नाम अमोल कहाव पुनि, सुरति सनेही जान ।
हक्क नाम साहिब कहो, पाक नाम परधान ॥
प्रकट नाम साहिबबहुरि, धीरज नाम कह फेर ।
उग्र नाम साहेब कहो, उदै नाम पुनि टेर ॥
गीर्ध नाम साहिब तथा, नामप्रकाशकहाय ।
उदित मुकुन्द बखानिये, अर्च नाम पुनि गाय ॥
ज्ञानी साहिब हंस मनि, सुकृत नाम अर्जनाम ।
पुनि रसनामअरु गंगमनि, परस नाम अभिराम ॥
जागृत नाम अरु भृगमनी, अकह कंठमणि होय ।
पुनि संतोषमनी कहो, चात्रिक नाम गनोय ॥
आदि नाम नेह नामहै, आदिनाम महानाम ।

पुनि निज नाम बखानिये, साहेबदासगुणग्राम ॥
उदै दास करु नाम पुनि, हगमनिमहामानि हंस।
मुक्तामनि धर्मदासके, बिदित बयालिस वंश ॥

अथ बयालिस वंशकी स्थिति वर्णन–चौपाई।

वंशबयालिसकी तिथि भाषो। सत्य कबीर प्रमानजो राखो ॥
बीश द्यौस अरु वर्ष पचीसा। सिंहासन थिति येती दीसा ॥
वर्ष पचीस बीश दिन केरी। भोग पूर्ण थित हो जिहि बेरी॥
गद्दी सौपै जो अधिकारी। निज इच्छा पर धाम पधारी ॥
जबलो थित करार नहिं पूजै। तबलो राज सिंहासन भूजै ॥
तिनको कबहु न मृत्युकी पीरा। अमर कीन तेहि सत्यकबीरा॥
गद्दीको करार नियरावै। सन्त महंत खबरि तब पावै ॥
सुने सन्त पृथ्वी चहुँ खूटे। दरशनहेत जाय तह जूटे ॥
लेहि चलानेको जब बीरा। जगप्रत्यक्ष निरखे तेहि तीरा ॥
यहिविधिआपलोक चलिजाई। सन्त महन्त बिदा तब पाई ॥
हंसन प्रति गद्दी थिति ऐसे। वंश बयालिस भोजे जैसे ॥
सँब्बत पंद्रहसौ अरु बीशा। वंश थाप तेहि समयसे दीसा॥
जबतें रही पीढी चलि आवै। मुक्तामनि तबही प्रकटावै ॥
धर्मकबीर होय परचारा। जहँ तहँसतगुरुसुयसउचारा ॥

इति।

अथ द्वितिये गुरुभवसागरमें दक्षिण दिशा गोसांई चतुर्भुज दासजी–चौपाई।

लोकमें अकह अंश परकाशा। महिमें सोई चतुर्भुजदासा ॥
दक्षिणदिश गुरु ताहि प्रसंशा। ताके है सत्ताइस वंशा ॥
यजुर वेद विधि पंथ चलाई। कुशहर द्वीप मांह प्रकटाई ॥
नग्र करनाटक तेहि रजधानी। गह टकसार ज्ञानकी बानी ॥

इति।

अथ चतुर्भुजदासजीके सताइस वंशकेनाम–चौपाई ।

प्रथम प्रेम कह दुतिये हुलासा । तीजे अनंद चौथ विश्वासा ॥
पंचमहित प्रीतिहै छठवे । सतम निरख विबेकहै अठवे ॥
नौमें सत्त छमा दशमें वद । ग्यरहे धीरज बरहे अनहद ॥
तेरहे शील संतोषे चौदहे । पंद्रहे सुमति बुद्धि सोरहे ॥
सत्रहभाव पुनि भक्ती जाना । उनिस दया वीशवे जाना ॥
एकीस कृपा विचार बाईसे । एकपन तेईस मोक्ष चौवीशे ॥
पचीसवे मेद छबीसवे मोखा । सताईसवे सुमती चोखा ॥
लोकमैं यह सब नाम कहाये । महिमें न्यारे नाम धराये ॥

इति ।

अथ तृतीये गुरुभवसागरमें गोसाँई बंकेजी पूर्वदिशा–चौपाई ।

लोकमें जो हं अंश कहाया । भवसागर बंकेजी राया ॥
सोलह वंश तासुके होई । पूरब दिशमें प्रकटे सोई ॥
प्लक्ष द्वीप दरभंगानगरे । सामवेद मम भाषे सगरे ॥
सो गहि मूलज्ञानकी बानी । पंथप्रचार आपनो ठानी ॥

इति ।

अथ राय बंकेजीके सोलह वंशके नाम जो लोकमें प्रसिद्धहैं–चौपाई ।

माया प्रथम कूर्म दुसरोई । तीसर अदल अष्टकह सोई ॥
चौथ निरंजन छत्र मुनि पंचम । छठेआपमुनि पेखमुनिसत्तम ॥
अठयेजीत मुनिनौमशीतलमुनि । दशमें भृगुमुनि ग्यरहेकंठमुनि ॥
बरहे कलंकमुनि तेरहे गंगमुनि । चौदहे विहंगमुनि पंद्रहेसोमुनि
मुनि सो रहे जलरंग गोसाँई । षोडशवंश केरि गुरुवाई ॥

इति ।

अथ चौथे गुरुभवसागरमें गोसाँई सहतेजी पश्चिमदिशा–चौपाई ।

अंश हिरम्मर लोकमें होई । सहतेजी भवसागर सोई ॥

पश्चिम दिशा करे गुरुवाई। वेद अथर्बन ताने पाई ॥
शालमल्य जो द्वीप कहाई। मानपुर शहरमें सो प्रकटाई ॥
कथे ज्ञान रहि बीजक बानी। सात वंश ताके परमानी ॥
इति।

अथ सहतेजीके सातवंशके नाम—चौपाई।

प्रथमवंर्ष पारस कहवाये। दुतिये स्वातिसनेही गाये ॥
तीजे भृंगसमीप बखानी। चौथे लहरसिंधु कहि गानी ॥
पंचम दीपक ज्योति कहाई। पुनि जल भाष षष्टमें जोई ॥
सप्तम मलयागिर कहि टेरा। सात वंश सहतेजी केरा ॥
निज निज वंशन युत गुरुवारी। सत्यकबीरको धर्म प्रचारी ॥
जक्त जीवको कर उपदेशा। परम धरमको कहे संदेशा ॥
इनते इतर पंथ बहुतेरो। सत्यकबीरकी कृपा घनेरो ॥
इति।

अथ सत्यकबीरके बारह पंथ वर्णन—चौपाई।

बारह पंथके नाम बतावो। प्रथम नरायणदास कहावो ॥
जेठ पुत्र धर्मदासके सोई। जागू पंथ दूसरो होई ॥
तीजे सुरति गोपाल पुकारा। मूल निरंजन चौथ उचारा ॥
पंचमपंथ आहि टकसारी। छठे भागू पंथ पसारी ॥
सो बीजकले ज्ञान सुनाया। सतयेमें सत नामी आया ॥
अष्टम पंथ कमाली होई। नौमे राम कबीर कहोई ॥
दशमें प्रेम धामकी बानी। ग्यरहे जीवा पंथ बखानी ॥
बरहे एक अचारय आयौ। अपनो नाम कबीर बतायौ ॥
बारह पंथ सुयशगुरु गैहै। सतगुरु कृपा परमपद पैहैं ॥
इति।

अथ सत्यकबीरके इतरपंथ वर्णन—चौपाई।

प्रथमें नानक पंथ बखानो। पानप बहुरि पंथ कहि गानो ॥
दासमलोक पंथ परचारा। बहुरि गरीबदास विस्तारा ॥
इत उतदेशन देशन माही। सत्यकबीर पंथ जहँ ताही ॥
जहँ तहँ देखी सत्य कबीरा। हिंदू मुसलमान गुरु पीरा ॥
निज इच्छाते सो तन धारे। कालजालते जीव उबारे ॥
कबहु योनिसंकट नहिं आवै। जीव दया करि सतगुरु धावै ॥
जिन जिनसतगुरुकोपहिचाना। सो अवश्य लह पद निर्बाना ॥

शब्द ।

हम बसै चामके धाम हमें कोई क्या जाने।
पशुपंछी नरनाग जहां लगि सबै चामको साज।
चामै चामको दाम बटोरै चामरंगको राज ॥
चामै माडै चामै पोवै चामें करे रसोई।
चामै चामको परसि जिवावै चामकरे सो होई।
चामै गावै चाम बजावै चाम करावै नाच ॥
चामै चामको भाव बतावै चाम बीच है सांच।
कहैं कवीर सुनो भाई साधो हमहै पूरे चमार।
जो कोई हमको पहिचानै उतरे भवनिधि पार।
सो गुरु खोज सो संत सुजाना।
जो गुरु खोजि अमरघर आवै पावै मूल ठेकाना।
जिन गुरुगुरु पंच निरमाये रच्यौजमीं असमाना।
तिनके कर्मकटेभवबंधनाजिन ओहिगुरुकोजाना।
टीका मूल बिनप्रकट कीनोचौदहकोटिजो ज्ञाना।
नहीं बोल भाषामें आवै शब्दसैन सो जाना ॥
आशा बंधते परकट कीनो जो जैसे अनुमाना।

सारशब्द दियौहै पुरुषने आपतो गुप्त रहाना ॥
जिहि पारसते पुरुष दृढ़ाने करि चौका बंधाना।
कहैं कबीर ये अगम गुरूहै सही छाप परवाना ॥
दोहा—जेते पंथ कबीरके, भिन्न भिन्न बिधि थाप।
कहु चौका अरु आरती, कंठी माला छाप ॥
तिलक अरु कंठीमात्र कहु, कहु शब्दहि निरधार।
कहु आंदू कहु भिन्न कछु, सबको तारन हार ॥
कोई त्रिगुणकी भक्तिमय, कोई तिनते न्यार।

इति।

अथ नारायणदासजीकी कथा—चौपाई।

धर्मदाससुत दास नरायण। भिन्नकथा कछुतासु बतायन॥
न्यारो पंथ आपनो ठाना। बारह पंथमें तासु मिलाना ॥
वंश माह द्वै भेद बखाना। प्रथम नरायणदासहि जाना ॥
वचन चुरामणि दुतिय बताई। वंशकेरि कड़िहारी पाई ॥
दोनो जगमें पंथ चलावै। धर्मदासके वंश कहावै ॥

इति।

अथ जगजीवनदासजी सत्यनामकी कथा—चौपाई।

सतनामी जगजीवन दासा। अवध देशमें पंथ प्रकाशा ॥
कोटवा नग्रमें सो प्रकटाना। आहि मध्यमहि हिंदुस्थान ॥
राजपूत कुल कर ठकुराई। सतगुरु कृपाते पंथ चलाई ॥
न्यारो ज्ञान आपनो भाषा। ताके भये बहुत शिषसाका ॥
कारी तिलक देहि निज माथा। आन्दू बांधे अपने हाथा ॥
आंदू एक भांतिको धागा। कंठीके बदले कर लागा ॥

इति।

अथ रामकबीरजीकी कथा—चौपाई ।

राम कबीर कि कथा कहीजै । वैरागिनको ज्ञान गहीजै ॥
ठाकुर प्रतिमा पूजे सोई । रामकृष्णको ध्यावै ओई ॥
इत कबीर पंथिनसे मेला । उत बैरागिनमें मिलि खेला ॥
रामकृष्ण सम्बंधी जोई । प्रीतिकरे पूजै सब सोई ॥

इति ।

अथ नानकशाहजीकी कथा—चौपाई ।

नानकशाह कीन तप भारी । सबविधि भये ज्ञान अधिकरी॥
भक्तिभाव ताको लखि पाया । तापर सतगुरु कीनो दाया ॥
जिंदा रूप धरयौ तब साँई । प्रभु पंजाव देश चलि आई ॥
अनहद बानी कियौ पुकारा । सुनिके नानक दरश निहारा ॥
सुनिके अमर लोककी बानी । जानिपरा निज समरथज्ञानी॥

नानक वचन ।

आवा पुरुष महागुरु ज्ञानी । हमअमरलोककीसुनीनबानी ॥
अर्ज सुनो प्रभु जिंदा स्वामी । कह अमरलोकरहा निजुधामी॥
काहू न कही अमर निजु बानी। धन्य कबीर परमगुरु ज्ञानी॥
कोइ न पावै तुमरो भेदा । खोज थके ब्रह्मा चहु वेदा ॥

जिन्दा वचन ।

अब नानक बहुतै तप कीना । निरंकार बहुतैं दिन चीन्हा ॥
है निरंकारते पुरुष निनारा । अजर द्वीप ताकी टकसारा ॥
पुरुष विछोह भयौ तुम जबते । कालकठिन मग रोंक्यौ तबते ॥
इहां तुम सरिस भक्त नहिं होई । क्यों परपुरुष न भेटेउ कोई ॥
जबते हमते बिछुरे भाई । साठि हजार जन्म तुम पाई ॥
धरि २ जन्म भक्ति भल कीना । फिर काल चक्र निरंजन दीना॥
गहु मम शब्द तो उतरो पारा । बिन सतशब्द गये यम द्वारा ॥

तुम बड़ भक्त भवसागर आवा । और जीवको कौन चलावा ॥
निरंकार सब सृष्टि भुलावा । तुम करि भक्ति लौटि क्यों आवा ॥

नानक वचन ।

धन्य पुरुष तुम यह पद भाषी । यह पद अमर गुप्त कह राखी ॥
जबलों हम तुमको नाहिं पावा । अगम अपार भर्म फैलावा ॥
कहो गोसाँई हमते ज्ञाना । परमपुरुष हम तुमको जाना ॥
धन्य जिंदा प्रभु पुरुष पुराना । विरले जन तुमको पहिचाना ॥

जिंदा वचन ।

भये दयाल पुरुष गुरुज्ञानी । गहो पान परवाना वानी ॥
भली भई तुम हमको पावा । सकलो पंथ कालको धावा ॥
तुम इनते अब भये निनारा । फेरि जन्म नाहोय तुमारा ॥
भली सुरति तुम हमको चीन्हा । अमरमंत्र हम तुमको दीन्हा ॥
स्वसमवेद हम कहि निज बानी । परमपुरुष गति तुम्हैं बखानी ॥

नानक वचन ।

धन्य पुरुष ज्ञानी करतारा । जीवकाज प्रकटे संसारा ॥
धन्य करता तुम बंदी छोरा । ज्ञान तुम्हार महा बल जोरा ॥
दिया दान गुरु किया उबारा । नानक अमरलोक पगधारा ॥

इति ।

चौपाई ।

यहिविधि नानक गुरुपद गहेऊ । शिष शाखा तेहि जगमें रहेऊ ॥
गुरुपद तजि बहु पंथ चलाये । अन्यदेवकी सेव गहाये ॥
परमपुरुष पद नहिं पहिचाना । भांति अनेक बनायो बाना ॥
अजहूँ गुरुकी तीन निशानी । गहे कछुक गुरुकी निज बानी ॥
द्वितिये सत्यनामकी साका । तृतिये देखा श्वेत पताका ॥
क्षत्री कुल नानक तन धारी । ताको सुयश गाव संसारी ॥

इति ।

अथ गरीबदासजीकी कथा—चौपाई ।

गरीबदासकी कथा बखानो । जाटके कुलमें सो प्रकटानो ॥
दिल्ली निकट नग्र छोटियानी । सतगुरु कृपा भयो सो ज्ञानी ॥
सत्यकबीरको सुयश उचारा । जक्तमांह निज पंथ पसारा ॥
सतगुरुकी अस्तुति भल गावै । अधिक प्रीति मनमांह बढ़ावै ॥
एकसौ वर्ष ताहि चलि गयऊ । प्रकट गरीबदास जब भयऊ ॥

इति ।

अथ कबीर आचार वर्णन—चौपाई ।

सत्यनामकी सेवा धारा । सुमिरण ध्यान नाम निरधारा ॥
सतगुरु वर्णन प्रीति सुहाये । मूरतको नहिं शीस नवाये ॥
तीरथ व्रत मूरत भ्रमजाला । सत्यभक्ति गहिये सतचाला ॥
निरगुण सरगुणको तजि दीजै । सत्यपुरुषकी भक्ति गहीजै ॥
संतगुरूकी सेवा धारे । तन मन धन अर्पण करि डारे ॥
कोटिन तीर्थ गुरूके चरना । संशय शोच पोच सब हरना ॥
दुःखी दीन देखत दुःख लागा । परमारथ पथ तनधन त्यागा ॥
गृही साधु दोउ एक समाना । परमदयाल दोहूको बाना ॥
मद्य मांस भक्ष जगमें जोई । महामलीन जानिये सोई ॥
परम दया सब जिवपर पालो । अधोदृष्टि मारगमें चालो ॥
हिंसा कर्म जेते जग मांहीं । ताके कबहूं निकट न जाहीं ॥
सब जीवनकी कर रखवाली । जीवघात कहु बात न चाली ॥
वर्षाऋतु जब जिव अधिकारा । तब नहिं कबहुँ पंथ पगधारा ॥
अमल नाम जगमें हैं जेते । सकल अभक्ष जानिये तेते ॥

सत्यकबीर वचन ।

साखी—विष्णुधर्म जैनी दया, मुसलमान यकतार ।
ये तीनो जब जानि लै, तब जिव उतरे पार ॥

चौपाई ।

तीनों जहाँ होय संवट्टा । सो कबीर आचारको ठट्टा ॥
शौच अचार शुद्ध सब करनी । उज्ज्वल क्रिया बइह्लव बरनी ॥
अंतर बाहर परम पुनीता । हिंसा रहित कर्म चितचीता ॥
जस जैनी जिव दाया पाला । ताही सम कबीरमुनि चाला ॥
मुसलमानके यक अल्लाहा । ताहीते निज नेह निबाहा ॥
तिमि कबीरमुनिके सतनामा । रह लौलीन सदा सो तामा ॥
स्वसम वेद विधि कर शुभकर्मा । सार शब्द गहि पावै मर्मा ॥
सतगुन गहे बइह्लव ताते । भाषे परम पुरुषकी बातें ॥
शुक्ल भेष सब शुक्लाचारा । शुक्लवर्ण शुक्लै व्यौहारा ॥
शेली टोपी तुलसी माला । कंठी कंठमें तिलक विशाला ॥
सूत्र अरु शिखा बइह्लव बाना । योग युक्ति गुरुधर्म प्रमाना ॥
करकरमंडल चोला पहिरे । चर्चा ज्ञानमांह बड़ गहिरे ॥
तत्त्वमांह निःतत्त्व बताई । झीना ज्ञान कथै ऋषिराई ॥
असन वसन विधिवत सो धरही । धर्मवस्तु कछु संग्रह करही ॥

इति ।

अथ तिलकस्वरूपवर्णन—चौपाई ।

ऊर्द्धपुण्ड्र अरु दंडाकारा । शुभ्रतिलक तेहि सोह लिलारा ॥
नासा अग्र भागते काढा । मस्तक अंत प्रयंत लो ठाढा ॥
नाकबांस दोउ भृकुटी बीचे । मस्तक अंत प्रयंतलों खींचे ॥
दंडाकार सो तिलक बताई । तासु महातम कहो न जाई ॥
यमदंडनको दंडक दंडा । कर्म भर्म सो कर शतखंडा ॥
परम बइह्लव तिलक जो धारी । तिलकदेखि यम बिलखासिधारी
ताको अर्थ कहो किमि जाई । सुर नर मुनि कोइ पार न पाई ॥

दोय स्वरूप अकार बखाना। एक थूल यक सूक्षम जाना ॥
सूक्षम रूप अकारहै एही। विष्णु विश्वंभर कहिये तेही ॥
स्वरव्यंजन द्वै भांतिके अक्षर। सबहीको मह पितु अकारबर॥
स्वर अक्षरको आदि अकारा। सोई सर्व धर्म नयसारा ॥
स्थूल स्वरूप अकार जो कहिये। सकल स्वरनके आदिमें लहिये
स्थूल रूप है जग विस्तारा। सूक्षम रूप रमै संसारा ॥
परम पुरुषहै आदि अकारा। अमल अलेख अभेद अपारा ॥
आदि अकार जो गह्यो विकारा। ताते भयो सकल संसारा ॥
आदि अकारते तीनों गुनहै। सतगुणरूप अकार विष्णु है ॥
थूल अकार विकार गहंता। सबही वर्णन मांह रमंता ॥
वासुदेवसो रमै चराचर। लखि नहिंपरत सो अलख अगोचर॥
संस्कृत महँ सोई आकारा। अल्लिफ पारसीमांह पुकारा ॥
सो अल्लिफ अल्लाह कहाया। ताहि अलिफते सबजग जाया॥
ताकी सिफत कही नहिं जाई। पीर पयंबर पार न पाई ॥
जो कोई अल्लिफ पहिचाना। ताही रूपमांह मिलि जाना ॥
चारखानि जेते जग माहीं। बिना अलिफ कतहूं कछुनाहीं॥
कहूँ गुप्त कहुँ प्रकट निहारी। यह अल्लिफ सब मांह बिहारी॥
देखे ताहि कोइ कोइ साधू। जिनके हृदये ज्ञान अगाधू ॥
तेहि अल्लिफकी कथा अपारा। गिरा गनेश शेष कथिहारा ॥
नर बपुरा सो किहि बिधि कहई। शिव सनकादिक मूक है रहई॥
सत्य कबीरको तिलक है येही। वंशके साधु जो मस्तक देही॥
इतर पंथको तिलक है न्यारे। वेद धर्मकीरीति बिचारे ॥

इति।

अथ सत्य कबीरको धामक्षेत्र वर्णन वार्ता।

सहज सुरति संप्रदा धीरज धाम दशमद्वार त्रिपुटी तीरथ

सुष्मना सुख विलास। काया रामशाला अगम इष्ट। निश्चित नाम उपाशी लौ माला मनसा देवी मनसो देव अलख अचा-रज सत्य गोत्र समुझ शाखा वेदविचार खासा सुमिरन निह अक्षर मंत्र प्रीति परिक्रमा जीव योग ऋषि निजमन निजब-इल्लव निर्भय मुक्ती गुरु शब्द गुरुपाट येता धाम क्षेत्र अवि-नाशीकी सेजपर कबीरने सुनाया। इतना अर्थ ले काशी कबीर गुरु रामानंद पास आया॥

इति धाम क्षेत्र।

अथ जीवके अंतकालको वर्णन चौपाई।

अंतकाल जब जिवको आवै। यथा कर्म तस देही पावै॥
हेठ द्वार जब जीव निकाशा। नरकखानिमें ताको बासा॥
ठेले नरक शीस बल जाई। ताहीमें पुनि रहै समाई॥
नाभद्वार जौ प्रान चलाना। जलचर यानि माह प्रकटाना॥
मूल द्वारकर जीव पयाना। पशू योनिमें तासु ठिकाना॥
जीभ द्वारते जिव कढ़ि आवै। अन्नखानिमें बासा पावै॥
श्वासद्वारते जिव जब जाता। अंडजखानिमें सो प्रकटाता॥
नेत्र द्वार जब जीव सिधारा। मक्खीआदिक तन सोधारा॥
श्रौन द्वारते जिव जब चाला। प्रेम देह पावै ततकाला॥
दशमद्वारते निकसै प्राना। राजा होय भोग विधनाना॥
रंभ द्वारते जिव जब जाता। परम पुरुषके लोक समाता॥

इति।

अथ हंसनको स्थानवर्णन सत्य कबीर वचन—चौपाई।

तेज अंड है पालँग वारा। द्वै पालंग मध्य अँधियारा॥
सालोकमुक्ति मृतलोक बखाना। मानसरोवर तिहि अस्थाना॥
धीया अंश तहाँ बैठारा। चौसठकामिनि संग बिहारा।

जो कोइ बाम मताको ध्यावै । सो सालोक मुक्तिको पावै ॥
सहस साठ वैकुंठ रहाई । तहँ सुमेर रहा ठहराई ॥
धर्मराय अविनाशी रहई । पुण्य पापको लेखा गहई ॥
तहां सामीप मुक्ति है सोई । नौसे सखी तेरह सँग होई ॥
पांच शिखा सुमेर रहाई । पांचो अंश कला तहँ लाई ॥
ईशान कोन ध्रुव आसन कीना । वाइबकोन कुबेरहि दीना ॥
नैर्ऋतु कोन यमनको थाना । अग्नीकोन इन्द्र अस्थाना ॥
जाको धर्मरायमें कहिया । मध्य विष्णुसिंहासन लहिया॥
सहस साठि वैकुंठ प्रमाना । तहांते शून्य डोरि बंधाना ॥
मारग जो निर्वानहि ध्यावै । सो समीप वैकुंठहि पावै ॥
मेरुते शून्य अठारह कोरी । तहँवा लगी शून्यकी डोरी ॥
शून्य मध्य है द्वीप अनूपा । तहां निरञ्जन ज्योतिस्वरूपा॥
अंधकार है शून्य मझारा । द्वै पालंग शून्य बिस्तारा ॥
चार करोर ज्योति उजियारी । शोभा अद्भुत तासु निहारी ॥
सारूप मुक्ति सोई तब पाई । मारग भेद अघोर चलाई ॥
आगे अक्षरको अस्थाना । पालँग एक तहांते जाना ॥
अक्षर योग माया विस्तारी । मुक्ति सायुज्य महै मतधारी॥
तहांते चार वेद परमाना । चौथी मुक्तिको यही ठेकाना ॥
तहाँते आगे कोइ न गैऊ । यह मत चारो वेदन कहेऊ ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

धर्मदास बिनती चितलाई । साहेब कहो भेद समुझाई ॥
चार मुक्ति अस्थान बतावो । आगे कहो भेद जिमि पावो ॥
बस्ती शून्य बीचकी भाषो । समरथमोहिगोयजिनि राखो॥

सत्यकबीर वचन ।

धर्मदास तुम भलकै जानी । जो बूझो सो कहो बखानी ॥

एक असंख अक्षरते आगे । अचिंत नामको डोरी लागे ॥
अधर द्वीपहै ताको नामा । परम रम्य अक्षर विश्रामा ॥
निरतै प्रेम सुरति तिहि द्वारा । तिहि संग सखी बारह हज्जारा॥
तीन अंश आगे परमाना । ओहं सोहं को अस्थाना ॥
आठ अंश तहँवा उपजाये ! अंश वंश अस्थान बनाये ॥
ओहं सोहं होत उचारा । तेहि संग हंस छतीस हजारा ॥
आगे सहज सुरति अस्थाना । तहाँते शून्य डोर बंधाना ॥
आगे शून्यहै पांच असंखा । मूल सुरत अस्थान बिसेषा ॥
तेहि संग हंस बावन हज्जारा । पांच ब्रह्म उनते उपचारा ॥
चार असंख शून्य तेहि आगे । इच्छा सुरति तहाँ अनुरागे ॥
खात सनेही जिन को धारा । तिन संग हँस पचीस हजारा ॥
आगे शून्य असंख द्वैजाना । तहाँ अकूर सुरति अस्थाना ॥
पांचहजार हंससँग सांचे । तिनकी सुरत हंस सब बांचे ॥
जहाँ अकूर केर पर माना । तिलपरमान द्वार अनुमाना ॥
बिहङ्गशब्द तहँ लागी डोरी । चढि हंसागये पूरुष सोरी ॥

साखी—सोरह असंख लोक है, धर्मन करो बिचार ।
चारअसंख है बस्ती, बारह सुन्नपसार ॥

चौपाई ।

आदि अन्त अरु वंश पसारा । तहलगि देख शून्य बिस्तारा॥
यतना तजि जब होय निनारा । हंसा आवै लोक हमारा ॥
हमै चीन्हि सतगुरु रस पीये । कर्म तोरिके युगयुग जीये ॥
निशदिनसतगुरु सुरतिलगावै । साधु सन्तके चितै समावै ॥
जा पर दया सन्तगुरु केरी । तिनकी कटी कर्मकी बेरी ॥
करि करनी अभिमान भुलाई । तन छूटे यम ले धरि खाई ॥
तन मन धन ले प्रीति लगावै । सो हंसा सतलोक सिधावै ॥
सत्य लोकहै अधरस नीपा । तामध्ये सत्ताइस द्वीपा ॥

सत्य शब्दको टेका दीना । ऐसे बिधि पुहमी रचि लीना ॥
सागरसात तहाँ बिस्तारा । चलि हंसा जहँ करे बिहारा ॥
पुहुपद्वीपहै मध्य सिंहासन । कलाद्वीप हंसनको आसन ॥
साखी—अबिगति भूषन अंगमें, अबिगति करे शृंगार ।
अबिगति बस्तर छाजई, अबिगति करे अहार ॥

इति ।

अथ प्रलय वर्णन—चौपाई ।

तीन प्रकार कि सृष्टि बखानो । प्रथमें ब्रह्म सृष्टि कहि गानो ॥
द्वितिये जीव कि सृष्टि कहायो। तृतिये माया सृष्टि बतायो ॥
ब्रह्म सृष्टि आचिंत प्रमाना । जीव सृष्टि अक्षरते जाना ॥
माया सृष्टि निरञ्जन करता । सिरजै पोषै पुनि संहरता ॥
माया सृष्टि जाय बिनसाई । जीव ब्रह्म नहिं प्रलैमें आई ॥
रचना सेखि निरञ्जन लेता । गूमट शीस माह धरि देता ॥
शिरमें गूमट अजब कहाई । सकल सृष्टि तेहि माह समाई ॥
प्रलयको द्यौस आव जोहिवारा । जक्त समस्त होय संहारा ॥
पुनि जलते पूरे संसारा । उठै चहूंदिस लहरि अपारा ॥
जलकी ऐसी बृद्ध बताई । अति उतंग पानी चढि जाई ॥
पृथ्वीते ऊपर जल सोई । दश योजन लो ऊँचा होई ॥
अन्तकाल कलियुगजब आवै । चीन्ह भया पनबहुत दे खावै ॥
सवासौ वर्ष ग्रहन निरधारा । चन्द ग्रहण सत बर्ष बिचारा ॥
ताहि ग्रहन ते लेखा लीजै । कलियुग लोक प्रवाना दीजै ॥

नानक वचन ।

परलयकी बिधि कहो दयाला । अलख ज्योति वर्षैकेहिख्याला ॥
काल बली तुमको नहिं माना । प्रलयकाल तेहि कहा ठिकाना ॥

जिंदा वचन ।

सुन नानक यह भेद अपारा । काल प्रलय जब करे संहारा ॥

रचना निगलि निरंजन लेता । अमरलोकसे अलगाहि रहता ॥
लेरचना फिरता सो रहई । गूमट शीशमें सब जिव गहई ॥
प्रलय द्वीपते पुरुष निनारा । सो साहिब नहिं जग औतारा ॥
प्रलय निरंजन संग पसारा । ले बैठे सब आप मझारा ॥
तेज रूप वर्त्तै नौ खंडा । लेय समेटि सकल ब्रह्मंडा ॥
तीनदेव चौकी उठि जाई । मेरु सुमेर सिंधु चलि जाई ॥
शून्न अकाश वर्त नौ खंडा । पाँच तत्त्वको रहै न झंडा ॥
ॐकार मठ रहै समाई । सो फिरता रह शून्नमें भाई ॥
सत्तर युग लो झूलत रहई । ता पीछे अति संकट गहई ॥
तब युग सत्तर शून्न रहीता । प्रलयकरे सब जीवन भरीता ॥
फिर अमरावति छाह सिधाई । फिर सतपुरुषको टेरत भाई ॥
दुखित होय अरजी तब लाया । पुरुष दयाल दे मन भाया ॥
तबहि पुरुष ज्ञानीको टेरो । जाय शून्नमें कीजै फेरो ॥
कहो निरंजन पै अब जाई । कूर्म पीठपै बैठहु भाई ॥
चलिके फिर हम तापह आये । पुरुष बचन ताको समुझाये ॥
सुनो निरंजन बचन हमारा । जाय कूर्म पै करो पसारा ॥
रचना करो सकल ब्रह्मंडा । जाय कूर्म पैरोपौ झंडा ॥
सुन्यौ निरंजन सो फरमाना । सुनिके बचनकियौ परमाना ॥
सुनि सो बचन निरंजन धाये । जहां कूर्म तहँवा चलि आये ॥
बैठ कूर्मपै सतशब्द उचारा । रचिना प्रकट भई सतसारा ॥
पाँचतत्त्व परकट तब कीना । सात शून्य पर आसन दीना ॥
जलके ऊपर मही छवाई । नवोखंड सूमेर रचाई ॥
तहँ सुमेर परबत फैलाई । तब मुखते अद्या प्रकटाई ॥
मिलि दोनो तिरदेव उपाई । यहिबिधि सब रचना फैलाई ॥
उपजै ब्रह्मा विष्णु महेशा । नारद शारद गौरि गनेशा ॥

इति ।

अथ नर्क वर्णन—चौपाई।

प्रथमहि जल रंगी कहि गाया। ताके ऊपर कूर्म बताया॥
कूर्मके ऊपर मीन कहीते। मीनके ऊपर कछू पथीते॥
कच्छपपर बाराह बखाना। तापर शेष नाग अस्थाना॥
शेषनाग निज शिरपर धारा। पृथ्वी सहित सकल महिभारा॥
सात नरक चौरासी कुंडा। पर तामें पापिनको झुंडा॥
तहँ यमदूत ताडना करही। दंड प्रचंड जीव दुःखभरही॥

इति।

अथ चौदह यमके नाम।

दोहा—मृत्यु शृंग प्रथमै कहो, क्रोधित अंध बताय।
दुगदानी तीजे कहो, मन मकरंद जताय॥
चितचंचल पंचम गनौ, छठे अपर्बल नाम।
अंध अचेतहै सप्तमें, कर्मरेख पुनि मान॥
अग्निघंट नौमे कहो, कालसेन पुनि चीत।
मनसा मलई ग्यरहे, बरहे कह भय भीत॥
पुनि तालुकाहै तेरहे, सुरधार दशचार।
यमगन जेते नरकमें, ये चौदह सरदार॥

इति।

अथ सत्यकबीरके गुप्त होनेको वर्णन—चौपाई।

सँब्बत पंद्रहसौ उनहत्तर। देश उडैंसे सतगुरु पगधर॥
पुनि मगहर चलिगे गुरुदेवक। हिंदू मुसलमान जह सेवक॥
बीरसिंह नरनाथ बघेला। सत्तकबीरको सो तहँ चेला॥
बिजुली खाँ पठान सोऊ राजा। शिष्य कबीरकोतहां बिराजा॥
बिजुलीखां जब यह सुनि पाई। अब गुरुजगसे जाहि लुपाई॥
तब तासे पूछौ सो भेवा। हिंदू मुसलमान गुरुदेवा॥

जब सतगुरुको निज तनत्यागे। कौनधर्म प्रभुको सुभ लागे॥
हिंदू कैधौं मूसलमाना। मृत्युकर्म किहि बिधिते ठाना॥
तब कबीर तेहि उत्तर देऊ। जौं तुम लोथ हमारी लहेऊ॥
तौ अपनी कुलरीति बिचारा। मृत्युककर्म करतेहि अनुसारा॥
पुनि गुरु बीरसिंह गृह गेऊ। राजा रानी हर्षित भेऊ॥
चादर तानके पौढे जाई। भये अबोल कबीर गोसांई॥
राजा रानी जब अस लखेऊ। विकल भये सतगुरु तन तजेऊ
रुदन करे जब राजा रानी। नग्र शोरभा लोगन जानी॥
बिजुलीखां नृपको गुरभाई। सुनत खबर तुरितै उठिधाई॥
बीरसिंहसे बचन सुनावो। सतगुरु लोथ हमैं देखलावे॥
नृप गुरुलोथ जो मरगट कीन्हा। बिजुलीखां तेहि जोरसे लीना
लेभाग्यौ सो गाड़ौ जाई। राय बीरसिंह तब रिसियाई॥
ले निजु सैन संग तेहि वेला। चढ बीरसिंह राय बघेला॥
दोनो दिशते दल उनड़ाने। एकन कहा एकको माने॥
जब घमसान होनपर भेऊ। तब अकाश बानी अस कहेऊ

कवित्त।

कछु अकथ कहानी तहँ बोले नभवानी सुनोदोहु दल ज्ञानी जिव हानीमें न दीजिये। बिजुलीखां पठान कह ठाढे हो पठान पीरसिंहजी बघेल दहपेल मति कीजिये॥ हाड चाम न शरीरजन्म मरन न पीर असो साहिब कबीर सत्य बातको पतीजिये। देखो सबुर खुदाय नहिं लोथ कहुँ पाय कछु तहँदरसाय दोऊ भाग करि लीजिये।

चौपाई।

यह सुन दोनो रह हठराई। तब चलिके सो कबुरा खुदाई॥
अस अचरज तहँदेख्यो जाई। कतहुँ लोथ गुरु दृष्टि न आई॥

कबुरमें चादर पुष्प सो पाई। ले दोनों द्वैभाग बनाई॥
मुसलमान तेहि कबुरमें धरेऊ। हिंदू ले समाधसो करेऊ॥
हिंदूनके कबीर चौरा है। तरकनके कबीर रोजाहै॥
इत हिंदू सैवै गुरुदेवा। मुराशिद मुसलमान उत शेवा॥
बालरूप जब गुरु प्रकटाना। कमलपुष्पमें कर निज थाना॥
अंतकाल जब गयौ दुराई। गोरमें सोई पुष्प देखलाई॥
आदिअंत जाके नाहिं देही। जन्म मरन कवहूँ नाहिं तेही॥
सकल बिकार तो जो प्रभुपारा। जीवकाज तनधर संसारा॥
सह्यौ निरादर दुःख अधिकाई। निज दासनको दास कहाई॥
सो सब जीव हेतको दीसा। समरथ परमगुरू जगदीशा॥
कबुर बीचते गये लोपाई। मथुरा नग्रमें पहुँचे जाई॥
नीरू नीमा जोलह जोलाही। तनतजिके परकटभे ताही॥
दोनोको निज शब्द गहाई। जाते भवनिधि फेर न आई॥
मथुरा नग्रते बहुरि सिधाई। धर्मदास ढिग सतगुरु आई॥
धर्मदासहि बहु भांति शिखाई। सहितदेह पुनि गयौ लोपाई॥
महाकठिन युग काल युग होई। शुभ करनी जिव करे न कोई॥
यज्ञयोग जप तप व्रत दाना। भावन भक्ति विषय लपटाना॥
तिनको काज कौनाबिधि सुतरे। बिन कबीर गुरु पार न उतरे॥
दयासिंधु तेहि पार लंघावै। सत्यकबीर कि सरनजो आवै

सत्यकबीर वचन।

बावन बीर कबीर कहावो। कलियुगकेर जीव मुक्तावो॥

इति।

अथ स्वसमवेदकी स्फूटवार्ता—चौपाई।

एकलक्ष अरु असी हजारा। पीर पयंबरको औतारा॥
सो सब आहि निरंजन वंशा। तन धरि धरि निज पिताप्रसंशा
दश औतार निरंजन केरे। रामकृष्ण सब माह बडेरे॥

पूरण आप निरंजन होई। यामें फेरफार नहिं कोई॥

दोहा–पांच सहस्र अरु पांचसै, जब कलियुग बितजाय।
महापुरुष फरमान तब, जग तारनको आय॥
हिन्दू तुर्क आदिक सबै, जेते जीव जहान।
सत्य नामकी साख गही, पावें पद निर्बान॥
यथा सरितगण आपही, मिलै सिन्धुमें धाय।
तिमि सत्य सुकृत सागरही, सबही पंथ समाय॥
जबलगि पूरण होय नहिं, ठीकेको तिथि वार।
कपट चातुरी तबहिलों, स्वसमवेद निरधार॥
सबहिं नारि नर शुद्ध तब, जब टीका दिन अंत।
कपट चातुरी छोड़िके, शरण कबीर गहंत॥
एक अनेकन ह्वै गयो, पुनि अनेक हो एक।
हंस चलै सत्यलोक सब, सत्यनामकी टेक॥
घर घर बोध विचारहो, दुमति दूर बहाय।
कलियुगमें सोई, बरते सहज सुभाय॥
कहा उग्र कह छुद्र हो, हर सबकी भवभीर।
सो समान समदृष्टि है, समरथ सत्य कबीर॥

बिनय–चौपाई।

बिन्ती करौं संत गुरु पाहीं। जो मम दोष न हृदय गहाहीं॥
निज अपराध कहो किन खोली। कहुँ २ मैं बदल्यो गुरु बोली॥
मम बानी अरु सद्गुरु बानी। दोनों यहि मत मेले सानी॥
जहँ जस उचित देख तस कीना। सूक्षम गुरु वाणी गहि लीना॥
मेरो दोष न कछु तहँ लेखब। सत्य कबीरकी बानी देखब॥
सत्य कबीरको ग्रन्थ निहारा। सबकछु लिख्योताहि अनुसारा॥

इति श्रीस्वसमवेद धर्मबोध समाप्त।
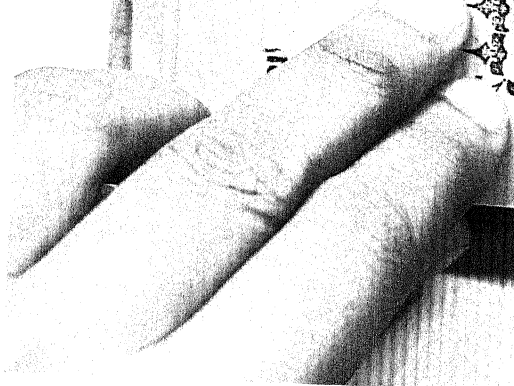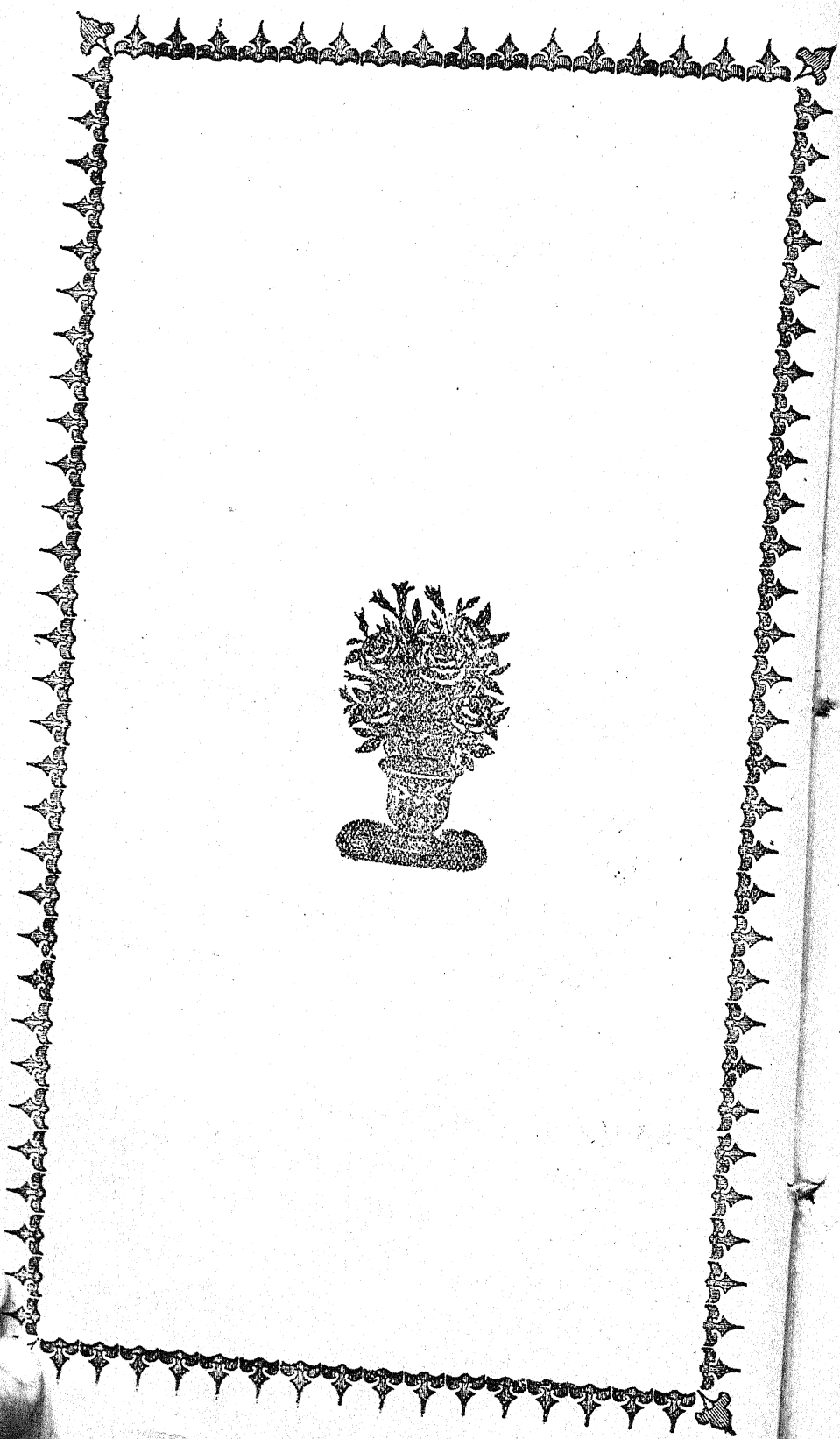
सत्य

अथ धर्मबोध प्रारंभः ।

भारतपथिक कबीरपंथी-
स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें

छापकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९६३, शाके १८२८.

Printed at the "Shri Venkateshwar" Steam Press, Bombay.
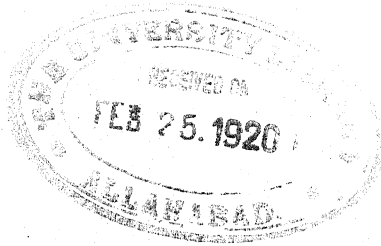
सत्य नाम ।
श्री कवीर साहिव ।

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतान, धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुवालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दया नाम, की दया वंश-व्यालीसकी दया।

अथ श्री बोधसागरे

त्रिंशतिस्तरंगः ।

धर्मबोध प्रारम्भः ।

गृहधर्म वर्णन ।

दोहा-गृहाश्रमीके धर्मको, वर्णन करों सुजान ।
जिहि आश्रम आश्रम सकल, आश्रम कतहुं न आन॥
सांझ सकार मध्याह्नको, सन्ध्या तीनों काल ।
धर्म कर्म तत्पर सदा, कीजे सुरति सँभाल ॥

कोटिन कंटक घेरि ज्यों, नित्य क्रिया निज कीन ।
सुमिरन भजन एकांतमें, मनचंचल गहि लीन ॥
साधू गुरु सेवा करे, श्रद्धा प्रेम सहीत ।
देव परम प्रभु ध्यावई, करि अतिशय मनप्रीत ॥
तन मन साधु जो सेवई, जपे निरंतर नाम ।
गृही सो पावे परमपद, योग समाधि न काम ॥
पुरुष यती सो जानिये, निज तिय तीय विचार ।
मात बहिन पुत्री सकल, औरी जो जग नार ॥
तिय ऐसो व्रत धर्मधर, निज पति सेवत जोय ।
इतर पुरुष जे जगतमें, पिता भ्रात सुत होय ॥
पतिकी आज्ञामें रहै, निज तन मनते लाग ।
प्रिय विपरीत न कछु करे, ता तियको बड़ भाग ॥
मनकामना विहायके, हर्षसहित कर दान ।
सो तन मन निर्मल भया, होय पापकी हान ॥
यज्ञ दान बिन गुरु करे, निशि दिन माला फेर ।
निष्फल है करनी सकल, सतगुरु भाषे टेर ॥
प्रथमें गुरुसे पूछिये, कीजे काज बहोर ।
सो सुखदायक होतहै, मेटे जिवका खोर ॥
अभ्यागत आगम निरखि, आदर मान समेत ।
भोजन छाजन वित्त यथा, सदा काल जो देत ॥
सोइ म्लेच्छ सम जानिये, गृही जो दान विहीन ।
यहि कारण नित दान कर, जो नर चतुर प्रवीन ॥
पात्र कुपात्र विचारिके, तब दीजे तेहि दान ।
देता लेता सुख लहै, अन्त होय नहिं हान ॥
[illegible] साधु भिखारि कोइ, नहिं आवे जब द्वार ।

तादिन मन पछतात बहु, करत अकेल अहार ॥
भोजनपाक निहारिके, इत उत द्वारे झांक।
अभ्यागत भूखा निरखि, मारे तत्क्षण हांक ॥
बिन हरिकृपा न संत मिल, संतमिलन सुखसार।
तिनके आश्रय मुक्ति गति, संकट सकल निवार ॥
गृही होय तो भक्ति कर, नातो करु वैराग।
दोहु भावते एक गहु, थोथी कथनी त्याग ॥
फल कारण सेवा करे, निशि दिन याचे राम।
कहैं कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥
सज्जन सगे कुटुम्ब हितु, जो कोइ द्वारे आव।
नहीं निरादर कर कोई, राखे सबको भाव ॥
रहे सदा घर वरमें, सुमिरनते लौलीन।
ऐसे गृहीको काम कह, करवा अरु कौपीन ॥
कौड़ी कौड़ी जोरिके, कीने लक्ष करोर।
कौड़ी एक न संग चले, केतो दाम बटोर ॥
जो धन हरिके हेत नाहिं, धरम राह नाहिं जात।
सो धन चोर लबार गह, धर छाती पर लात ॥
सतको सौदा जो करे, दम्भ छिद्र छल त्याग।
अपने भागको धन लहै, परधन विषसों लाग ॥
भूखा जेहि घरते फिरे, ताको लागे पाप।
गृही पाप ले जात है, पाप आपनो थाप ॥
साधु न जेंवें जाहि घर, ताघर जेंवें भूत।
कलिमल ग्रसित जानिये, छुटै न कबहूं छूत ॥
गृही भक्त निज धर्मरत, ताको साधु विचार।
परमप्रीति जेहि साधुते, परम धर्म धन धार ॥
प्रथमहि साधु जेंवाइये, पीछे भोजन भोग।

ऐसे पापको टालिये, कटे नित्यको रोग ।
जाके सुख सब धाम है, मन विरक्त हो जाहि ॥
गृही सो साधू जानिये, दाग न लागे ताहि ।
जो सुत वित मिथ्या लखे, दुख सुख एक समान ॥
परम भक्त सो गृही वह, पावै पद निर्वान ।
हरिपद प्रीति लगाइये, औरते छोरे निर्वाह ॥
गृही होयकै साधुते, यही तरनकी राह ।
यद्यपि उत्तम कर्म करि, रहै रहित अभिमान ॥
साधु देखि शिर नावते, करते आदर मान ।
बार बार निज श्रवणते, सुने जो धर्म्म पुरान[1] ॥
कोमल चित्त उदार नित, हिन्सा रहित बखान ।
न्याय धर्म युत कर्म सब, करन कबहुं अन्याय ।
जे अन्यायी लागे हैं, बांधे यम पुर जायँ ॥
सरल सुभाव रहे सदा, कोह द्रोह न विषाद ।
प्रीति शुद्ध सत पुन गहे, संतत संत प्रसाद ॥

अर्थ-जो क्रोध द्रोह और मिथ्या विचारसे रहित होकर कपट रहित संतोंकी कृपा चाहता है वह संतोंकी दयासे शांत शुद्ध सत्य और पुण्य रूप पदार्थ सत्यपर पारखको प्राप्त होता है ।

यथा लाभ संतोष कर, तृष्णा तरल तरंग ।
उठन न पावै हृदयमें, कीजै ज्ञानते भंग ॥
गृही साधु दोउ जानिये, चक्र धर्म्म रथकेर ।
दोहु न विन कारज नासरे, मिलिके कलिमल पेर ॥

---

१ पुरान कथा, धर्म्म निर्णय जिसके अन्दर लिखी हो और जिसमें धर्म्म वीरों की कथा होवें ।

गृह कारजमें पाप बहु, नित लागे सुनु लोय।
ताहित दान अवश्य है, दूर ताहिते होय॥
चक्की चौका चूल्ह महँ, झाडू अरु जलथान।
गृह आश्रमीको नित्य यह, पाप पंच विधिजान॥
और युगन महँ गृही कर, योग यज्ञ मख जाप।
कलिमें सो कछु होय नहिं, करै दानते पाप॥
यथा योग जग लोग सब, वित सम कीजे दान।
कह राजा कहँ रंक है, दोनों एक समान॥
जो धन पाय न धर्मरत, नहीं दान व्यवहार।
सो शिर पावको भारभरि, बंधे यमपुर द्वार॥
गुरुजन जो परिवारके, कर आदर सतकार।
लघु गुरुलोग जो योग जस, कुलको पालनहार॥
पुत्रपौत्र बनितादि जे, इतर जेते लघु देख।
भलो सिखावन दीजिये, जाते भलो विशेष॥
जो गुरुजन परिवारके, लघुको शीख न देत।
जो कछु औगुन सो करे, अघ शिर अपने लेत॥
सोई मित्र सोई सगा, भल शिख शिशुहि दिखाय।
तरुण अवस्था सुख लहै, गुरुजन सीख प्रभाव॥
मारि ताड़िकैं हठ किये, बाल अधर्मकी राह।
शुभगुण ज्ञानके पंथमें, बांधि चलाओ ताह॥
मातु पिता सो शत्रु है, बाल पढ़ावै जो नाहि।
हंसनमें बकला यथा, कूर पण्डित माहि॥
पहिले अपने धर्म्मको, भली भांति सिखलाय।
अन्य धर्मको सीखसुनि, भटकि बालबुद्धि जाय॥
अपनो धर्म न जानेऊ, सीख्यो न्यारो धर्म।

अज्ञानी यहि विधि किते,भूलिते गह्यौ अकर्म ॥
जेते गृही हैं जगतमें, निज निज घरके भूप ।
हुकुम चलै निज भौनमें, भूपतिके तद्रूप ॥
जिमि नृप चढ़ै बजायके, धरती बश कर लेय ।
परजा सब तेहि बश भये, बिनयते भूपति सेय ॥
इमि सब गृही निशान दे, व्याहको सजै बरात ।
भूमि बारि लहि प्रजाभे, सुत सुतादि लघु जात ॥
जो कछु धनको लाभहो, शुद्ध कमाई कीन ।
धनते दशवाँ अंशको, अपने गुरुको दीन ॥
जो गुरुनिकट निवास करे, तो सेवाकरे नित्त ।
जो कहु दूर अनत वसे, ध्यानकरे करि हित्त ॥
छठै मास गुरुदरश कर, सेवाकर निज वश्य ।
छठे मास जो पहुँचनहीं, बरषमेंकरो अवश्य ॥
गुरु विरक्त जो लेइनहीं, शिष्य निज आरतदेइ ।
गुरु आज्ञा अनुसार तो, दान औ पुण्य करदेइ ॥

अथ गृहस्थके विशेष लक्षण ।

सत्यबचन प्रथमें कहो, दुतिये दया बताय ।
तीजो तप चौथे शौच, दोनो भांति कराय ॥
बाहर जलते शौचकर, अन्तर ज्ञान के द्वार ।
पचये तितिक्षा इच्छा, षट सदसत[1] निरुवार ॥
सतम सम दम अष्टमे, नवम अहिंसा होय ।
ब्रह्मचर्य्य दशमें कहा, त्याग एकादश जोय ॥
बारहे स्वाध्यायहि कहो, अरु तेरहे मृदुचित्त ।
चौदह तोष पुनि पंद्रहे, साथ सेव करे नित्त ॥
सोलहे विषयत्यागकर, सत्रहे वृथा सुखोपाय ।

१ सत्यासत्य ।

मौन अठारह सोकहा, वृथा बोल न गवाय ॥
ऊनविंश इस देहसे, आतम न्यारा जान।
विशवे जो अन्नादि कछु,बांटिके भोजन पान ॥
ब्रह्म इकिशवे सर्वमय, नरमें निरख विशेष।
बाइसवें पुनि श्रवणकह, तेइस कीर्तन लेख ॥
स्मृति[1] चौविश पच्चीसवें, पूजा सेवन छबीश।
बन्दन दास्य अठाइसे, संख्य स्वार्पणा[2] तीस॥

इति ३० लक्षण।

केते जनकादिक गृही, जो निज धर्म्मप्रवीन।
पायो शुभगति आपहू, औरनहू गति दीन ॥
हरिके हेतु न देत धन, देत कुमारग मांहि।
ऐसे अन्यायी अधम, बांधे यमपुर जाहि ॥
जो दीने सो पाइहै, लुनै बोया जो बीज।
जो नहिं बोया बीज है, पावेनाहिं कछु चीज ॥
गाडा धन छाडा वृथा, जो दीना सो मोर।
क्रूर विचार करेनहीं, लगे न हरिकी ओर ॥
निज धनके भागी जिते, सगे बन्धु परिवार।
जैसा जाको भागहै, दीजे धर्म्म संभार ॥
अपने भागको लाजिये, है हराम पर हक्क।
सूकर गायकी सौंहपर, अहक्क और जनि तक्क॥
गह्यो सुदामा भाग हरि, भये महा कंगाल।
औरभागविष सो तजो,धर्म्मनीति निजुपाल ॥
तन मनधन हरि हेतदे, चेत भक्तिकर प्रीति।
यहसंसार असारलखि, चल जनकी विपरीति॥

१ सुमिरन। २ आत्मसमर्पण।

धनमन तन सब जायगो,रहेन जो कछु दीस ।
मूरख वृथा गवावसो, भक्ति भजै जगदीश ॥
महातिमिर घेर हृदय, विषयभोग लपटान ।
सुमति नआई अजौ उर,मरनकालनियरान ॥
खाट परे तब झंखई, नयनन आवे नीर ।
तब कछु यतन बनै नहीं, तनू व्यापेमृत्युपीर ॥
देखेजब यमदूतको, ठाढ भे सन्मुख आय ।
महाभयंकर भेख लखि,इतउत जीव लुकाय ॥
सकल शिथिल इन्द्री भई,रहा न कोई ओट ।
अब कहँभागिकैजाइहो,यमगण पकरीझोंट ॥
पुण्य भजन कीना नहीं, नाहिं संतनसे हेत ।
बारबार पछतात मन,चिड़िया चुगगई खेत ॥

गृहीधर्म्मका वर्णन समाप्त ।

गृहीधर्म वर्णन ।

(कबीर संग्रह)

दोहा—जो मानुष गृहधर्म युत, राखे शील विचार ।
गुरुमुख वाणी साधु संग, मन वच सेवा सार ॥
सेवकभाव सदा रहे, अहम न आने चित्त ।
निर्णय लखे यथार्थविधि, साधुनको कर मित्त ॥
सत्य शील दाया सहित, वरते जगव्यवहार ।
गुरू साधुके आश्रित, दीनवचन उच्चार ॥
बहु संग्रह विख्यानके, चित्त न आवे ताहि ।
मधुकरइव सब जगतइव, घाटि बाढ़ि लखि वर्ताहि ॥
प्रीति सदा गुरु पारख करई । संगति साधु सदा आचरई ॥
उत्तम मध्यम जग व्यवहारा । निर्णयसहित करे अनुसारा ॥

दोहा-गृहीधर्म बड़ खटपट, तामें रहि हुशियार।
लोक वेदकी रीति सब, करता सहित विचार॥
जीवघात आदिक करम, करै न कबहूं भूल।
सोइ रक्षा जीवन करे, प्रेम सहित अनुकूल॥
वाणी अप्रिय कहै नहिं, कहैं सबन उपकार।
ठहरे पद बोधित गुरु, लावे भक्ति गोहार॥
चारि खान बहु जीयरहि, दुखदाई जो होय।
जुरे तो रक्षे जीवकहं, अस कहरहे चुप सोय॥
गुरु साधु हिं सन्मानई, मिथ्या जालहिं त्याग।
सांच हृदय दायासहित, निज सुख गुरु अनुराग॥
दीनदयालको मत लखे, शिष्य स्वतःपद थीर।
साधु गुरु सम जानिके, सेवहि मन बच धीर॥
साधुनकी, जल अन्नते, वस्त्र सहित करै रच्छ।
शक्य यथारथ अनुक्रम, गुरुसेवी शिष्य स्वच्छ॥
गुरू साधुपद दीर्घजग, है शिष्य सबन प्रमान।
त्रिविधि ताहि सेवन करे, आपु दासपद मान॥
है शिष्य जे दासातने, हंताते तेइ भीन।
तेई गुरु पारख लखे, हंत कल्पना कीन॥
तेई उत्तम पारखी, गुरुमतके अधिकार।
हंता नाशे शिष्यजो, हंस थीर पदशार॥
दासभाव सेवा सहित, भक्ति साधु गुरुकेर।
यहि प्रकार हंसा वसे, सेवक को नहिं फेर॥

निर्णय जो गुरुमुखही सूना। ताहि मनन साक्षातहु गूना॥
प्रेम लगावे अस्ति पद माही। ठहरे गुरु पंचाइत पाही॥

इति।

अथ वैराग धर्म वर्णन ।

दोहा—दयापाल सब जीवके, बोले सत्य विचार ।
मन कर्म वानी त्यागकर, मैथुन अष्टप्रकार ॥
काठचित्रकी नाव जो, ताहू दिशि मत देख ।
देखतही तन विष चढ़ै, सर्प दंशकर लेख ॥
मनमतंग माने नहीं, महा महाउत ज्ञान ।
ताते अंकुश दीजिये, हो कलिमल की हान ॥
सुवरण मिट्टी एकसम, दत्त अदत्त न लेत ।
कार्य्य मात्र कछु लीजिये, भोजन छाजन हेत ॥
सकल परिग्रह त्यागिये, सूक्ष्म तनके काज ।
धर्म्म वस्तु जो राखिये, तौना होय अकाज ॥
भय नहिं देत न करतभय, निर्भय दृढ मनजास ।
सर्प सिंह आदिक लखे, रचहु डर नहिं तास ॥
काला सर्प शरीरमें, सब जग डारचो खाय ।
साधु अंगना मोडई, ज्यो भावै त्यों खाय ॥
सन्मुख आवतबाण लखि,कबहु न मोडत अंग ।
ठौर न तजि थिरता भजे, होय प्राण जौ भंग ॥
पर्वतसे टूटी शिला, शिरपर आवत देख ।
सरकत नहिं निज ठौर ते, प्राणघात निज लेख॥
भूमि सैनकै काठ पर, जीव घात ना होय ।
लोट पोट कीजे सही, ना पडि रहिये सोय ॥
योग ध्यानमें दृढ़ सदा, शुद्ध हृदय निर्ग्रन्थ ।
आठ पहर जपमें रहे, पाव परम पद पन्थ ॥
धर्म पुराण विचार नित्त, गुरुको बचन प्रमान ।
शांति सरल अक्रोध चित, इन्द्री दम शम जान ॥

ताजि चंचलता भावको, अनहिंसा रह नित्त।
दृढ समाधिआसनअचल, छितिसो[1] क्षमाहैचित्त॥
घेरे विपति अनेक जो, आसन तजे न संत।
दुःख द्वन्द लखि भाग मति,दृढ संकल्प गहंत॥
शुद्ध अचार बिचार मय, नाहिं मनमें मदमान।
धीरज धर्म्म संतोष गहि,लघु भोजन परमान॥
राग द्वेष नाहिं शत्रुहित, तजे दर्प हंकार।
शीतउष्ण समदुःख सुख,प्रिय अप्रिय यकसार॥
मान और अपमान सम, तजे जक्त की आश।
चाह रहित संशय रहित, हर्ष शोक नाहिं तास॥
अधो दृष्टि मारग चले, चार हाथ महि देख।
जाग्रत मौन मधुर बचन, मन संकल्प न लेख॥
पात्र कुपात्र बिचार ग्रह, भिक्षा दान जो लेत।
नीच अकर्मी सूम घर, दान महा दुख देत॥
सदा होय मलपात जिहि, देहि में जो नौ द्वार।
सूखी ठौर एकन्त लखि, ताको दीजै डार॥
देह को विग्रह नामहै, रोग दुःख बहु घेर।
धीरज धरे मनमें सदा, दुख करि काहु न टेर॥
अपने मन कोई करे, भावे करे न सेव।
काहू से नहीं जांच कछु, यही संतको टेब॥
लाभालाभ जयाजयौ, गंध कुगंध समान।
रूप कुरूपहै समलखे, गुरु हरिको गुनगान॥
संध्या तीनो काल दृढ, कर्म क्रिया विधिलेख।
दम्भ छिद्र छल रचेनहिं, प्रभु अनन्यजो देख॥

---

[1] छितिसो पृथ्वीके समान क्षमावान्।

प्रथम विराग विवेक पुनि, ज्ञान और विज्ञान ।
चारो नयनपुनीत जेहि, पर औगुन मलखान ॥
अपनो औगुन देखते, औरन को गुन दीख ।
निन्दा चुगलीसब तजे, यहि सतगुरुकी सीख ॥
यह दुनिया मुर्दारहै, तामें लागे स्वान ।
ताते जगसुख साज सब, त्यागत संत सुजान ॥
स्वर्ग आदि जो सुख घने, काट वीटवतजान ।
मन इन्द्री विपरीति कर, दुःखदेही नाहिंमान ॥
जगमें गुरू अनेकहैं, सतगुरु सांच टटोल ।
कांचकी ढेरबखेर बहु, गह मणिएकअमोल ॥
संत जौहरी जानसो, ज्ञानन नैन निरुआर ।
सार बस्तुको गहि लियो, त्याग्यो सकल असार ॥
सदा काल तप तन दहे, ओर छोरे यकसार ।
सो सूरे साधू कहो, उतरे भवनिधिपार ॥
सूरा तो क्षणमें मरे, जरे सती क्षणमाहि ।
परम सूर साधू कहो, सदा काल तन दाह ॥
मूरख ते मतज्ञान कह, मौनधारि वह लेहु ।
जेहि पथ विषपनमेंचले, चलाजान तेहिदेहु ॥
उत्तम ज्ञान न आव तेहि, छोड़ि देत निज धर्म्म ।
ताते तेहि न हटाइये, होय अधिक मति भर्म ॥
कोइ कुधर्म्म अज्ञानते, गहि लीना जो संत ।
ज्ञानभये अवगुण लखे, तजिये ताहि तुरंत ॥
अजर अमर लखि आपको, तप दृढ़ ध्यान गहंत ।
देह गेह सब तुच्छहै, जान सुजान कहंत ॥
इंद्री तत्त्व प्रकृतिसे, आतम जाने पार ।

जाप एक पल नहिं छुटे, टूटै न पावे तार ॥
जब जप करते थकि गये, हरि यश गावो संत।
कै निज धर्म पुरान पढ, ऐसो धर्म सिद्धंत ॥
मोहको जब लग त्याग नहीं, तबलग नहिं वैराग।
जो मनमें वैराग नहीं, तौ समाधि नहिं लाग ॥
दुखको ताजि भागे नहीं, सुख नाहिं चाहत सोय।
नेह क्रोध भय त्यागिये, बुद्धि की थिरता होय ॥
आप जो खैंचके आपमें, कर्म बटोरे आप।
विषयते इंद्री खैंचिये, कटे देहको पाप ॥
इंद्री भोग न पाव जब, मृतक सो रहि जात।
तब इंद्रियन परे जो, सो आतम दर्शात ॥
बुद्धिवन्त जे पुरुषवर, बलकरि इंद्री साध।
विषयन ध्यावन काम उग, कोह मोहकर बाध ॥
मोहते सुधि बुधि नाशहै, सुधि बुधि बिन मृतहोय।
जबै इंद्रिनको वश कियो, तबै शांति कह सोय ॥
शांतिते मन थिरता गहे, मन थिरताते योग।
योगते ध्यानसुध्यानते, ज्ञान गहैं सब लोग ॥
ज्ञानते आतम लाभहै, लाभ न ताहि समान।
इंद्री दम नित जाग्रन, तबही बुद्धि थिरान ॥
मनमें जो विषयन भजे, कर्म्म तजे का होय।
सर्व मनोरथ त्यागिये, बुद्धि शांति तब होय ॥
फाका फुक्र फिक्र नहीं, इंद्रहि जाने रंक ॥
सात गांठ कोपीनके, तऊ न साधुको शंक
हरिकी भक्ति कबीर करु, ताजि विषया रस चोज
बारबार नाहिं पाइये, मनुष्य जन्मकी मौज ॥

कबीर हरीकी भक्ति विन, धिक जीवन संसार।
धूवाँकेरा धौलहरा, जात न लागे बार॥
कबीर-जबलग नाता जातिका, तबलग भक्ति न होय।
भक्तिकरे कोइ शूरमां, जाति वरण कुल खोय॥
कबीर-भक्ति निशानी मुक्तिकी, चढे संत सब धाय।
जिनजिन मनआलस किया, तिनहीतिन जहडाय॥
कबीर-जबलग आशा देहकी, तबलग भक्ति न होय।
आशा त्यागे हरि भजे, भक्त कहावे सोय॥
सब इंद्रिनके भोगमें, राग द्वेष तजि देहु।
काम क्रोध रजगुणहिंते, नेह न कीजे एहु॥
ठौर पुनीत निहारिके, कर आसन विस्तार।
अभयशांति ब्रह्मचर्यगहि, इमि समाधिको धार॥
द्दष्टि न इत उत तानिये, द्दगमहँ ध्यान लगाय।
चित चंचलको रोकिके, रसरसते बैठाय॥
दीपशिखा बिन पवनके, इमि योगी मन थीर।
योग जो करे वैराग युत, सो मेटे भवभीर॥
ज्ञानी रोगी अर्थिही, जिज्ञासू ये चार।
सो सबही हरि ध्यावते, ज्ञानी उतरे पार॥
गोत्र ऊंच अरु नीच जो, पावतहै जग जीव।
आलस नहिं अरु ब्याकुली, ताने तमगुण कीव॥
ताते ज्ञानको गोपहै, हृदयमें अंधियार।
रजतमको सतपेल जब, होइ ज्ञान इन्द्रिद्वार॥
मृदु शुचि हो गुरु सेइये, ब्रह्मचर्य्य चित लाय।
अनहिंसा तप दान युत, निग्रह मौन गहाय॥
कर्मके फलको त्यागहै, देह कर्म्म नहिं त्याग।

मनकामनाऽहंकार युत, सो राजस दुख भाग ॥
शुभअशुभ नहिं जान जो, किये सहित अभिमान।
हिंसा युतहै कर्म्म जो, तामस ताहि बखान ॥
थोरे दिनके कर्म्मको, बहुत अबार लगाय।
आलसमें कारज किये, तामें तम सरसाय ॥
क्षमासमान न तप कोई, सुख नहिं तोष समान।
तृष्णासम नहिं व्याध कोई, धर्म्म न दया समान ॥
व्रतके पाँचो अंगहैं, त्याग न चाह न मोह।
निः संशय निंस्प्रीहता, यह पाँचो विधि जोह ॥
योगके पाँचो अंगहै, क्षमा * अष्काम बताय।
समदृष्टि आनन्दमय, फिरि अनन्य कहलाय ॥
भक्तिके पाँचो अंगहै, नामरटन धुन धार।
सत्य शान्ति अरु प्रेमदृढ़, सुरति न चरनन टार ॥
भक्तिमें तीन प्रकारके, प्रेम कहावे संत।
रूप देह अत्यन्त जो, तीनो नाम बदंत।
ज्ञानके लक्षण अब कहौं, दशप्रकारको ज्ञान ॥
नित अक्रोध वैरागयुत, इन्द्रीदमन बखान।
दयापाल परमार्थी, क्षमावंत निर्धार।
शोकहीन निर्लोभकहि, निर्भय चित्त उदार ॥
शम दम विराग विवेक है, ज्ञानके साधन चार।
सात्त्विकि राजसि तामसी, निर्गुण श्रद्धा सार ॥
अंग योगके पाँच यह, संयम मौन यकन्त।
विषयत्याग आतम निरख, होय दुःखको अन्त ॥

* निष्काम।

पाँच अंग विज्ञानके, सत्यबचन निःशंक ।
सुखदुःख सम परमार्थी, लह विवेक निकलंक ॥
औरन औगुन देखि कह, औगुण अपने आहि ।
अपनो औगुन देखिये, जगत ब्रह्म दरसाहि ॥
औरनमें औगुन लखे, निज औगुन नहिं जान ।
अंधकार उरमें वसे, युत जड़ता अज्ञान ॥
जो कछु कहना चाहिये, चौड़े कहो बजाय ।
पीछे दोष न भाषिये, अमृत बचन सुनाय ॥
हृदय तराजू तौलके, तब मुख बाहर कीन ।
मधुरी बानी बोलके, परमारथ चित दीन ॥
यंत्र मंत्र सब त्यागिये, अन्यदेव मति ध्याय ।
जो साधू ऐसा करे, सो वे मुक्ति पद पाय ॥
चौदह विद्या सीखकै, पूरण पण्डित होइ ।
मूक बनै सब त्यागिके, वन्दनीयहै सोइ ॥

कबीर भानुप्रकाश अन्तर्गत साधु लक्षण समाप्त ।

अथ विमललक्षणवर्णन ।

प्रथम संसार भलीप्रकारसे चलाना, पश्चात परमार्थका विचार ग्रहण करना । विवेकियोंको सदा ध्यान रखना चाहिये कि, संसार छोड़ परमार्थका ढोंग करना अथवा परमार्थको छोड़कर केवल संसारमेंही निमग्न रहना मूर्खता और दुःखका कारण है, इस हेतु विवेककी चरितार्थता इसीमें है कि, संसार और परमार्थ दोनों मर्यादा पूर्वक चलाये जावें ।

संसारछोड़ परमार्थ करने लगे तो खानेको अन्न मिलेगा नहीं, फिर भूखे मरनेवालोंसे परमार्थ क्या हो सकेगा ? अंतमें संसार यात्राके लिये नाना प्रकारके उचित अनुचित व्यवहारोंमें

फँसना होगा । और इसप्रकार फँसे हुये पुरुषका फिर परमार्थमें लगना दुस्तर है ।

इसी प्रकारसे परमार्थको छोड़कर केवल संसारमेंही मग्न होनेसे पारलौकिक ज्ञानताके कारण अन्तमें नाना प्रकारके दुखोंसहित वारम्वार गर्भकी कठिन यन्त्रणाको सहना होगा । स्वामीके कामको छोड़कर घरमें बैठनेवालेको स्वामीकी ओरसे नानाप्रकारकी कठोरवाणी और उलाहनाके सहित लोगोंकी निन्दा उठानी पडती है उसीप्रकारके पारलौकिक (सद्गुरुकी आज्ञा) धर्म्म (परमार्थको) छोडकर संसारमेंही मग्न रहने वालेकी मुक्ति और सुख छूट जावेगा और कठिन यमका दण्ड सहना पडेगा प्रवृत्तिमें रहनेपरभी ज्ञानद्वारा आसक्ति शक्तिर-हित निर्लेप रहताहै वही उत्तमहै क्योंकि,वह सदा परम पदपर स्थित सारासारके विचारमें संलग्न रहताहै ।

प्रकृतिमें कुशल पुरुष निवृत्ति मार्गको सहजहीमें पूरा कर सक्ताहै परन्तु प्रवृत्तिमें जो कुशल नहींहै उसको परमार्थमेंभी कदापि सफलता नहीं होती शंकराचार्यादि महात्मागण जो बा-ल्यावस्थासेही त्यागीथे उन्हेंभी अन्तमें प्रवृत्तिके अनुभवको प्राप्त करनेका यत्न करना पड़ा ।

विशेषकर उपदेशकों और धर्म्म गुरुवों और आचार्य्य आदि गुरुकोटिके पुरुषोंको तौ अवश्य उभयप्रकारसे दक्ष और अनु-भवी होना चाहिये ।

इसी हेतुसे उचित है कि, शान्तिसे विचारपूर्वक धर्म्म और नीतिके अनुसार संसार और परमार्थ दोनोंहीको चलाना चाहिये एसा न करनेसे अनन्त दुखोंका भागी होना पडेगा ।

जीवोंका स्वभाव अनुकरण करनेकाहै तो जो मनुष्य शरीरमें आकर भ्रममें भटका उसको क्या कहना ?

साखी–जियत न तरे मुये का तरिहो, जियते जो न तरे !
गहि प्रतीति कीन जिन जासो, सो नर ताहैं मरे ॥

बीजक ।

मरे पीछेके बनावका विचारभी जीवित अवस्थामेंही करलेना मनुष्यका कर्तव्यहै ।

लोकमें प्रत्यक्ष दीख पड़ताहै कि, जो सदा जाग्रत रहताहै वह सुखी रहताहै और गाफ़िल दुख उठाता है इस कारणसे संसार और परमार्थ उभयमें जो चैतन्य है वही सुखी और सर्वको समाधान करनेको योग्य है ।

दोहा–धन्य धन्य तारण तरण, जिन परखा संसार ।
तेई वन्दी छोर हैं, तरण तारण उबार ॥

सारशब्द निर्णय ।

जो जीवित अवस्था सर्व प्रकारसे शक्ति सम्पन्न होनेमें पारखको प्राप्त नहीं होताहै वह कालके कठिन आक्रमणके समय क्या करसक्ताहै, उस समय तो कालके अधीन होकर चौरासीकेही मार्गमें जाना होगा । इस हेतुसे जहाँतक शीघ्रता होसके पूर्वज महात्मा लोगोंका और सतगुरुके बताये मार्गका वारम्वार विचारकर पारखको प्राप्तकर सत्यपदको प्राप्त होना चाहिये । क्योंकि जीव अनुक्रमण शील है एकको देखकर दूसरा मार्ग ग्रहण करता है ।

गुणवान्, बुद्धिमान्, विद्वान् और सदाचारी लोगोंकी संगती करके उनके सद्गुणोंको ग्रहण करना और अवगुणोंको त्याग करना । इस प्रकारसे जो सर्वके गुणकी परीक्षाकर ग्रहण

योग्यको ग्रहण करता है और त्यागने योग्यको त्यागता है; किसीके मनको दुखाता नहीं है, और मनुष्यमात्रके ज्ञान और चित्तकी परीक्षा करता है वही उत्तम पुरुष है, उसीको मनुष्य कहलाना शोभा देताहै। सर्व मनुष्योंमें उसकी सामान्य बुद्धि होती है, सर्व प्राणियोंपर एकभावसे दया रखता है, उनके ज्ञानकी तारतम्यतासे उनके द्वारा दुखसुखको प्राप्त हुआभी सदा उनको दया दृष्टिसे देखकर अनेक प्रकारसे उन्हें अज्ञानके घीसे निकालकर पारख राज्यमें प्राप्त करानेकी शुभ इच्छाको धारण किये रहता है।

बलिहारी तेहि पुरुषकी, परचित परखनहार ॥
बीजकसा० १३२।

इसीप्रकारसे विमल लक्षणका अनन्त स्वरूपहै, सदाचारी पारखी जब इन लक्षणोंकी ओर झुकताहै तब उसे स्वयम प्रकाश प्राप्त होता है और नित्य नवीन सुलक्षणको जानता जाता है।

अथ मूर्खलक्षण वर्णन।

मूर्ख दोप्रकारके होते हैं १ मूर्ख २ पठितमूर्ख इन दोनों प्रकारके मूर्खोंके लक्षण विचित्र प्रकारके कौतूहलसे पूर्ण हैं, इन्हीं लक्षणों द्वारा मनुष्यप्राणी लौकिक पारलौकिक दुःखोंके प्राप्त होतेहैं-इसी कारणसे उनको जानना, उन्हें परखना, उनसे अलग रहनेका प्रयत्न करना और इन लक्षणोंकर युक्त प्राणियोंकी सदा उपेक्षा करनेके हेतु, दोनोंके लक्षणोंको भिन्न २ लिखता हूँ।

जो प्रपंची हैं, जिसको आत्मज्ञान नहीं है, जो अज्ञानीहैं, उसे मूर्ख कहतेहैं-यद्यपि ऐसे मूर्खोंके लक्षणका विस्तार बहुत है तथापि यहां संक्षेपसे लिखा जाताहै।

अथ मूर्खलक्षण ।

जिसके उदरसे जन्म लिया ऐसी माताके साथ विरोध करे, और स्त्रीको प्यार करे, सर्व परिवारोंको छोड़दे केवल स्त्रीके वश होकर रहे,अपने अन्तर गुप्त बातको उस्से कहे उस्से मूर्ख जानना । परस्त्रीके साथ प्रेम करे, श्वसुरके घरमें वासकरे, नीचकी कन्यासे विवाहकरे वह मूर्ख है ।

बलवानके साथ गर्व करे, मनमें ममता रक्खे, बल बिना सत्ता दिखावे, आत्मस्तुति करे, देशमें रहके दुख भोगे और बाप दादेकी बड़ाई हाँके, उसे मूर्ख कहतेहैं । बिना कारणके हँसे, अत्यन्त अविवेकी (अर्थात् अवसर बिना बोले हँसे) और बहुतोंका शत्रु उसे मूर्ख जानो ।

अपने सम्बन्धियों और परिवारके रहते हुये उनकी उपेक्षा कर परायोंसे मित्रता करे, रात दिन पराया छिद्र ढूँढ़ता रहे, सो मूर्ख है ।

जहाँ बहुत लोग बैठे होयँ उनके बीचमें जाकर सोना और परदेशमें जाकर बहुत खाना–ऐसा मूर्ख बिना दूसरा कौन कर सक्ता है ।

मान अपमानकी जिसे समझ न होवे, जिसका मन सदा ब्यसनके वशमें पड़ाहो उसे मूर्ख जानना ।

पराये आशासे परिश्रम करना छोडकर जो अकेले पणमें आनन्द माने सो मूर्ख ।

मूर्ख घरमें बड़े विवेकी बनते हैं, बहुत बोलकर अपने परिवार और स्त्रियोंमें वकता बनते हैं परन्तु सभामें शर्म्मते हैं, संकोचसे मुखसे बोल नहीं निकाल सक्के ।

जो सुनता उसको सिखने जावेवृद्धेकों, निकट ज्ञानी-

पना प्रकट करे, सात्त्विक और सरल हृदयके जीवोंसे छल करे, अपनेसे श्रेष्ठके साथ स्नेह करने जावे, और किसीका उपदेश माने नहीं उसे मूर्ख मानना।

एकदम विषयी और निर्लज्ज होकर, मर्यादासे बाहर कार्य करता फिरे, रोगी होने परभी औषधि न ग्रहण करे, पथ्य सेवन न करे, जो कुछ सन्मुख आवे उसे त्याग करे नहीं उसे मूर्ख जानो।

अकेले परदेश जावे, परिचय विना साथ करे,और एकदम जाने बूझे बिना किसी बडे नगर (शहर) में जावे यह लक्षण मूर्खमेंही होते हैं।

जहाँ अपमान होताहो वहां वारम्वार जावे, जिसको मान अपमानका कुछ विचार नहीं वह मूर्ख है।

अपने नौकरके धनी होजानेपर उसकी सेवामें रहे और जहाँ मनलगे नहीं वहाँ रहे वह मूर्ख है।

मूर्ख बिना बिचारे तनिक अपराधपर भी दंड देते हैं सहज सहज बातोंमें कृपणता दिखलाते हैं।

देव पितृको नहीं मानता, शक्ति विना बडी २ बातें करना और सदा मूखसे अपशब्द बोलना मूर्खका काम है।

घरमें अपनीबड़ी बहादुरी प्रकटकरे और बाहर गरीब बनकर फिरे उसे मूर्ख जानना।

नीचकी मित्रता, परस्त्रीके साथ एकान्त और मार्ग चलते खाना मूर्खका लक्षण।

किये उपकारको माने नहीं, उपकारकोभी अपकार माने, अपना थोडा किया बहुत बतावे ऐसे कृतघ्नको बुद्धिमान् मूर्ख कहते हैं।

तामसी, आलसी, मनसे कुटिल और अधीरा मूर्ख होता है।

विद्या, वैभव, धन, पुरुषार्थ, बल और मान बिना मिथ्या करनेवाला मूर्ख होता है ।

लुच्चाई, लफंगई, लवारपना, कुकर्म, कुटिलता, बेगरजीपना और मलिनता मूर्खका लक्षण है ।

दांत,आंख,हाथ,वस्त्र और पग सर्वकाल मैला राखे सो मूर्ख।

ऊँचे चढकर वस्त्र पहिरे, बाहर चौतरपर बहुत बैठकर, प्रायः नंगे शरीर रहे सो मूर्ख ।

वैधृति, व्यतिपात, और कितने कुमुहूर्तोंको अपशकुनकी घात गिने सो मूर्ख ।

क्रोधसे, अभिमानसे, और कुबुद्धि से अपना आपही घात करै ऐसा अव्यवस्थित चित्तवाला मूर्ख है ।

अपने सुहृदके साथ खेदके साथ व्यवहार करे, सुख और शांतिका शब्द भी न बोले और नीच जनोंकी स्तुति करे वह मूर्ख ।

अपनेको सर्वप्रकारसे पूर्ण मानै शरणागतको धिक्कारे और लक्ष्मीका भरोसा करे सो मूर्ख ।

पुत्र,कलत्र और स्त्री अर्थात संसारिक विषय वासनाकोही मुख्य मानकर उसीमें मुग्ध हो जो परमात्माको भूल जावे उसे मूर्ख जानना ।

"करनी पारउतरनी" "जस करनी तस भरनी"।
कबीर कमाई आपनी,कदी न निष्फल जाय ॥
सात समुद्र आड़ा पडे, मिले अगाऊ धाय ।
अंगकी साखी ।

जो इस भावको नहींसमझताहै वह मूर्ख है पुरुषोंकी अपेक्षा जो स्त्रियोंको विशेष मानदे वह मूर्ख ।

दुर्जनके साथ भाषणकरे मर्यादाको त्यागकर, आंख मूंद कर मार्गमें चले वह मूर्ख ।

पित्र, गुरु, देव, माता, पिता, भ्राता, गुरु भाई, बडी बहिन चाची, गुरु पत्नी, गुरु बाहिनी, स्वामी आदिगुरुजनोंका द्रोह करे वह मूर्ख ।

गम्भीरताको छोडकर बोले, आदर बिना बोले, विना पूछे बोले, निन्द्य वस्तुको अंगीकार करे, मार्ग छोडकर चले और कुकर्म्मी मित्र करे वह मूर्ख है ।

दूसरेको दुखी देखकर हँसे सुख माने और दूसरेको सुखी देखकर दुख माने, ईर्षा और वैरसे हृदयको जलावै और गई वस्तुका शोक करे वह मूर्ख ।

अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करना जाने नहीं, सदा हँसी ठठ्ठा करे और हँसी ठठ्ठा करकेभी लड उठे उसे मूर्ख जानना ।

अपनेसे पूरा होसके नहीं ऐसी शर्त मारे, विना काम-केही बडबड करै, बोलनेकी रीति जाने नहीं उसे मूर्ख जानना।

वस्त्र शस्त्र विना ऊँचे स्थलपर जाबैठे और अपने गोत्रका विश्वासघात करे वह मूर्ख ।

चोरको अपनी पहचान बतलाव, दृष्टि पडी हुई वस्तु मांगे, क्रोधमें अपना अहित करे वह मूर्ख ।

नीच लोगोंकी संगति करे, घमंडके साथ बातकरे, बायें हाथसे पानी पीये वह मूर्ख ।

समर्थके साथ मत्सर करे, अलभ्य वस्तुकी आशा करे अप-नेही घरमें चोरीकरे वह मूर्ख ।

परमात्मा विना मनुष्यपर विश्वास लावे और निरर्थक अपनी आयुको नष्ट करे वह मूर्ख ।

"संसार दुःखसे भराहै" ऐसा जानने परभी देवोंको गालीदे और मित्रोंको भला बुरा कहे वह मूर्ख ।

अल्पअन्यायके लियेभी क्षमा न करे, सदा वरछीके नोक परभी रहे और विश्वासघातकरै उसे मूर्ख जानो ।

समर्थके साथ विरोध करे, जनमंडली जिसको देखकर क्रोधित होवें घडीमें भला घडीमें बुरा होवे उसे मूर्ख जानो ।

पुराने सेवकोंको छुड़ाकर नया सेवक रक्खे और जिसकी सभा नायक विना होवे वह मूर्ख ।

अनीतिसे धन प्राप्त करे, न्यायनीति और धर्मको छोडदे तथा साथके आदमियोंको त्यागदे सो मूर्ख ।

अपना पैसा दूसरेके पास रक्खे, दूसरेका अपने पास रक्खे नीचलोगोंके साथ व्यवहार करे सो मूर्ख ।

अतीतका अंत ढूँढे, कुग्राममें जाकर वासकरे और हमेशा चिन्तामें रहे सो मूर्ख ।

दो जन बात करते होवें वहाँ जाकर बैठे और दोनों हाथसे शिर खुजलावे वह मूर्ख ।

पानीमें थूके, पगसे पग खुजलावे, नीचमनुष्यकी सेवाकरे वह मूर्ख ।

स्त्री और बालकको मुंह चढावे अर्थात् निडरकरे, परस्त्रीके साथ कलह करे, बहुत कालकी मर्यादाको हलकी करे, गुंगे जीवको कारण विना मारे ताडनदे मूर्खकी मैत्री करे वह मूर्ख।

दोकी लडाई झगडेको खड़ा होकर देखे. और झूठी बात-को सच्ची और सच्चीको झूठी माने वह मूर्ख ।

लक्ष्मी मिलनेपर पहली पहचान भूल जावे और पूज्य वर्गोंपर हुकूमत चलावे, वह मूर्ख ।

अपने स्वार्थतक नम्रता दिखलावे, स्वार्थ निकले पीछे बेपरवाह होजावे और उपकार करनेवालेका कार्य्य न करे वह मूर्ख ।

अक्षरोंको छोडकर पढे, पुस्तककी ओर दृष्टि न राखे और कितना अपनी ओरसे मिलावे और अपनेको बहुत बुद्धिमान् प्रकट करे वह मूर्ख ।

स्वयम् कभी पुस्तक पाठ करे नहीं, दूसरोंको पाठ करने देनहीं और पुस्तकोंको बांधकर रक्खे वह महामूर्ख ।

इस प्रकारसे संक्षेपमें मूर्खोंका लक्षण वर्णन किया अपनी हितकी कामना करनेवाला पुरुष इनका विचारकर सदाही इन दुर्गुणोंसे बचनेका प्रयत्न करे कि, जिस्से यह मूर्खोंकी पंक्तिसे निकलकर उत्तमोंकी गिनतीमें आवे ।

अथ पठित मूर्खका लक्षण वर्णन ।

पीछे मूर्खका लक्षण वर्णन करि आये अब उनका लक्षण वर्णन करूँगा कि, जो बुद्धिमान् और भले कहलाने परभी मूर्ख हैं।

विद्वान् होनेपरभी जिनमें मूर्खता होतीहै उन्हें पठित मूर्ख कहते हैं ।

बहुत शास्त्र और ग्रन्थपठन पाठन और श्रवण किया होवे, ब्रह्मज्ञानकी वार्ता करे परन्तु झूठी आशा और मिथ्या अभिमानका त्याग न करे ऐसे विद्वान्को तोतेके ज्ञानसमान अज्ञानी मूर्ख जानना ।

मुक्तपुरुषोंके चरित्रको वारम्वार मुखसे कहता है, परन्तु उनके सदाचारका अनुकरण करता नहीं और स्वधर्मके साधनोंको तुच्छ दृष्टिसे देखताहै तथा औरोंको उनके आचरणसे हटाताहो उसे पढ़ा हुआ मूर्ख समझना ।

अपने ज्ञातापनके अभिमानसे सर्वमें दोष लगाता है, प्राणी मात्रमें छिद्रान्वेषण किया करता है; उसके शिष्य अथवा अधीनस्थ मनुष्य उसकी आज्ञासे बाहिर चलनेवाले हों; जिसके बोलनेसे दूसरोंका दिल दुखता हो; ऐसे पण्डितको पठितमूर्ख समझो ।

सम्पूर्ण पुस्तक बांचे बिना ग्रन्थको तथा ग्रन्थकारको दूषण देना, ग्रन्थके गुणकोभी अवगुणही समझना, थोडे अवगुणको देखकर संपूर्ण अवगुण किसीमें कल्पना करलेना पठितमूर्खोंके अतिरिक्त दूसरे किससे हो सक्ता है ?

सदाचार और सल्लक्षणोंसे हास्य मानकर, सदाचारी और सल्लक्षण युक्त पुरुषोंकी अदेखाई करता है, सदा उनको नीचा दिखानेकी चिन्तामें लगा रहता है, वह जो कुछ नीति अथवा न्याय अपने दोषोंको छिपानेके लिये करता है सब छल छिद्रसे भरे होते हैं।

मैं ज्ञानीहूँ; सर्वज्ञाताहूँ ऐसा मिथ्याभिमान रखकर प्रत्येक कार्य्योंमें हाथ डालदेताहै परन्तु कार्य्य सिद्ध न होनेपर मिथ्या क्रोधके वश हो जाता है। लोगोंके अधिकारका विचार किये विना उनसे बोलनेका साहस करता है और बचन जो बोलता है वह भी कठोर ।

बहुश्रुतपनके कारण वक्ताका सभामें अपमान करता है और मिथ्या बकवाद करता है ।

जिस बातके लिये दूसरोंको दूषित कहता वही बात अपने में होते हुये भी उसे जान नहीं सक्ता।

अभ्यासद्वारा सर्वविद्या प्राप्तकर लेता है परन्तु उसके द्वारा जगतका कुछ उपकार नहीं करसक्ता, किसीका उस्से समाधान नहीं होता ।

जिस प्रकार हाथी स्पर्श विषयमें लुब्ध होकर और भवँरा गन्धमें लुब्ध होकर बन्धनको प्राप्त होताहै उसी प्रकार पठित मूर्ख संसारमें फँसता है।

वह स्त्रियोंमें लुब्ध होता है, उन्हीका संग करता है, उन्हीका अपनी वाणीद्वारा निरूपण करता है, और नीच काममें प्रवृत्त रहता है।

जिस्से उसके मानकी हानि होवे उसीको दृढ़ रखता है; और अपनेको शरीर समझता हुआ सदा उसीके लालन पालनमें लगा रहता है।

सद्गुरु परमात्माकी स्तुतिको छोड़कर सत्य धर्म्म ग्रन्थोंका लिखना और रचना छोड़कर सांसारिक मनुष्योंकी प्रशंसा करता है, उनकी मिथ्या बड़ाई करता है, उनकी विषयमें कविता बनाताहै, जिससे कुछ सांसारिक लाभ हो उसीकी बडाई करता है, जो दृष्टिगोचर होता है, उसीको सत्य जानता है। ऐसा जो करनेवाला विद्वान् वह मूर्खही कहलाने योग्यहै।

स्त्रियोंके अवयवका वर्णन करताहै, शृङ्गार रसकी कवितामें अपना समय बिताता है नाटकादिके हावभावके वर्णन करनेमें अपनी लेखनीको घसताहै वह ईश्वरको भूल जाता है।

वैभवको प्राप्तहो सर्व प्राणीमात्रको तुच्छ समझताहै, और स्वयम् नास्तिक बनता है।

व्युत्पन्न, वैरागी, ब्रह्मज्ञानी, सन्यासी, साधु, महंत आदि उच्च उपाधिको धारण करनेपरभी प्राकृत जनोंको व्यापार धन्धाके भविष्य कहनेका काम उठाताहै वह महामूर्ख और दम्भी विषयाभिलाषी पठितमूर्खके पदको प्राप्त हुआ जानना।

किसीकीभी पूरी बातको सुने विना उसके गुणदोषमें छिद्र

ढूँढने लगताहै और दूसरेकी उन्नति देख नहीं सक्ताहै ऐसे दूषित विद्वान्को पठितमूर्ख कहतेहैं ।

भक्तिके साधन, वैराग्य और भजन विना भक्त और शम-दमादि साधन विना ब्रह्मज्ञानी, और सत्यासत्यकी परीक्षा विना अपनेको केवल मुखसेही भक्त, ब्रह्मज्ञानी और पारखी कहलानेकी कामनावाले पठित पुरुषोंको मूर्ख कहा जाताहै ।

स्वधर्म्मके नित्य नैमित्तिक कर्म्मोंमें श्रद्धाहीन, ऊंचकुलमें भी जन्म धारण करे नीच कर्म्मोंमें प्रवृत्त होनेवाला विद्वान् मूर्ख है, उसका आदर करनेवाला यदि नीचपुरुष भी हो तो उसकी मिथ्या प्रशंसा करताहै और पीठ पीछे उसकी निन्दा करताहै उसे पठितमूर्ख जानो ।

"मुखपर एक और पीठपीछे दूसरा" ऐसी जिसकी आदत हो, बोलनेकी बात अलग और करनेकी अलग हो; संसारमें अत्यन्त प्रवृत्ति करनेपरभी, परमार्थको धिक्कारे, और अपने वचनको सिद्ध करनेके लिये अपने ज्ञातव्यका आश्रयले; सांची बातको किनारे छोडकर लोगोंके रुचि अनुसार बात करे; ऐसे अपने जीवनको पराधीन और मृतक करनेवाले विद्वान्को पठितमूर्ख जानना ।

लोगोंको दिखलानेके लिये दम्भ जो किया करता है; अकर्तव्यको कर्तव्य मानकर उसमें प्रवृत्त होता है; मनमें सीधा और योग्यमार्गको जानते हुयेभी लोभसे लालचसे कि, मान बडाईकी इच्छा अथवा किसीभी परके पक्षपात से त्याग करके टेढ़े रस्ते चलताहै उसे पारखी महामूर्ख और ज्ञानियोंकी सभासे बाहर समझते हैं यदि वह उच्च आसन परभी बैठा हो तो क्या ?

रातदिन उत्तम उत्तम ग्रन्थोंको श्रवण करते हुयेभी अपना अवगुण त्याग नहीं करताहै, अपना हित आप समझता नहीं है, तत्त्वनिरूपणके श्रवण मननको जहाँ उत्तम मनुष्य बैठतेहों उनकी मसखरी करता हो, वह मिथ्याज्ञानी कदापि अपना हित नहीं करसक्ता।

अपनाशिष्य अनधिकारी होकर अपमान करने लगे, तबभी उसकी आशा न छोडे, ग्रन्थोंको सुनते कि, विचारते अथवा किसीके मुखसे उपदेशद्वारा अपने कर्तव्यकी खामी (कसर) कुछ मालूम होवे तो क्रोधित होकर गडबड़ करने लगे तो यदि वह लोगोंमें वहुत बुद्धिमान्भी प्रसिद्ध हो तो उसे महामूर्ख जानना।

वैभवमें मग्नहोकर सतगुरुकी उपेक्षा करे और अपनी गुरुपरम्पराको याद करे उसेभी मूर्ख जानना यद्यपि वह वैभव प्रतापसे जगतमें बुद्धिमान्भी कहलाता हो।

ज्ञानकी बात कहकर धन जमा करताहै, कृपणके समान धन भोगाता है, धनके लियेही परमार्थकी बात करता है, स्वयम् तो करसक्ता नहीं हो। और दूसरोंको वही बातें सिखावे, और ब्रह्मज्ञानका उपयोग अनधिकारी विषयलम्पट लोगोंके समक्ष करता होवे, ऐसा पराधीन हुआ। महंत, गोस्वामी, और साधु संत पठित मूर्खोंकी पंक्तीमें है। ऐसे लोग भक्तिमार्गको भ्रष्टकर परस्पर पक्षपातद्वारा वैर विरोध बढ़ाने वाले हैं।

परिवार त्यागकर साधु वेष धारण करलेनेवालोंको संसार तो छूटही गया और इधर परमार्थका भी साधन नहीं हो सका ऐसा जो धर्म्ममर्यादाको भ्रष्ट करनेवाला सो धर्म्मविरोधी मूर्ख कहलाता है।

जिस धर्म्मका स्वांग बनायाहो,उस धर्म्मके ऊपर पडते हुये विधर्मियोंके आक्रमणकी उपेक्षाकर जो स्वमान मर्यादाकी मरम्मतमें लगा रहे उस धर्म्मविध्वंसी मिथ्या स्वांगधारिको मूर्ख समझना।

स्वधर्म्मकी जिन बातों और कर्मोंसे हांसीहोतीहो, उन कर्मों और बातोंमें प्रवृत्त होकर, स्वधर्म्मके सिद्धान्तको न जानने वाले अथवा, उसकी निन्दा करने धर्म्म दूषियोंसे जो मेल मिलाप बढ़ावे वह धर्म्मघाती मूर्खहै।

इसी प्रकारसे संसारमें भले कहलाते हुये भी मूर्खताकेही वनमें भटकने वालोंका संक्षेपसे वर्णन किया। सज्जन जन इसे विचारे और आत्मसुधारके मार्गको पक्षपात रहित होकर ग्रहण करे।

इति श्रीधर्म्मबोध प्रथम भाग समाप्त।